भारत के लोकनृत्य

डॉ. श्याम परमार

रोज बुलबुलो लोल च्योन आमो
आरपोशो चेर क्यहो गोयो
अन्दर वन नय ज्यदर सप्पययो...

—ए बुलबुल, तनिक ठहर, मैं प्रेम में जली जा रही हूं। ए आलूबुखारे के फूल, मेरे प्रेमी, तुझे आने में देर क्यों हो गई ? कहीं तू जंगल में सो तो नहीं गया ?

(काश्मीर का एक नृत्यगीत)
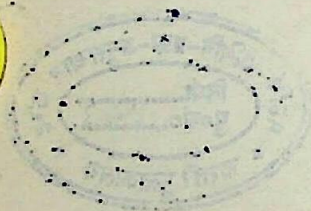
मूल्य : चार रुपये (4.00)

तीसरा संस्करण : 1981
BHARAT KE LOK-NRITYA (Folk Dances of India)
by Dr. Shyam Parmar

भारत के लोकनृत्य

डा० श्याम परमार

राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली
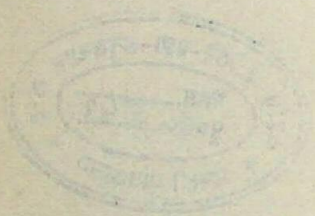
आमुख

लोकनृत्य और संगीत ऐसे माध्यम हैं जो प्रत्येक आदिवासी के निजीपन को रंगीन वनाते हैं। कालान्तर में वास्तविक गुण और प्रकृत आकांक्षाएं इन्हीं कला-रूपों में समादृत होकर जातीय अभिव्यक्ति में ढलती हैं। यह प्रक्रिया कभी-कभार चैतन्य होती है और किसी गुण या आकांक्षा को अपने में अंकित कर उसका पोषण करने लगती है। आदिवासियों के नृत्य और गीत दोनों ही मिले-जुले सम्वन्धों में खुले वातावरण के साधन हैं। कृषिजीवी जातियों के लिए भी ये कलाएं व्यवहारस्वरूप हैं; अपने संयुक्त रूप में जीवनयापन की पद्धति हैं जो उन्हें आपस में जोड़ती हैं एवं व्यक्तिगत प्रेम-प्रसंगों और उनकी पीड़ाओं को इन्हीं माध्यमों से अभिसिंचित करती हैं।

अवसर के अनुसार भारतीय लोकनृत्यों में वहुत कम परिवर्तन हुए हैं। उनकी आंतरिक गठन वही रही। मगर कुछ बाह्य रूपरेखाएं बदलने से स्पष्टतः नृत्य की संज्ञा बदल जाती है। इस वदलाव में गीत और ताल का योग होता है।

यह बात प्रकट है, भारतीय लोकनृत्यों में विशिष्ट मुद्राओं से सांकेतिकता प्रदान करने की प्रवृत्ति नहीं है। कुलीन नृत्यों की तरह इनमें आंखों, उंगलियों और चेहरों की भंगिमाओं से संकेत प्रदान नहीं किए जाते। इनमें केवल स्थूल संकेत ही होते हैं, अर्थात् पैर, कमर, हाथ, सिर या धड़ की भंगिमाएं ही हमारी दृष्टि में आती हैं। समूह की मुद्रा एक जैसी होती है। नृत्य की निजी व्यवस्था बजैयों की ताल से बद्ध होती है।

लोकनृत्यों का अपना निजी आकर्षण होता है। आज के युग में भी

इन नृत्यों का महत्त्व कम नहीं हुआ, बल्कि इनके प्रति नये सौन्दर्यबोध की शुरुआत देखी गई है। कहीं-कहीं इन्हें और भी अधिक संवारने का प्रयत्न हो रहा है।

भारत में कई संस्कृतियों का संगम हुआ है। आपस में मिल-जुलकर रहते हुए भी किसी तरह विविध संस्कृतियां अपनी अभिव्यक्तियों में स्वतंत्र हैं। यही एक चीज़ हमें भारतीय लोकनृत्यों की विविधता की ओर खींचती है।

इन नृत्यों का सिलसिला हमें सदियों पहले ले जाता है। कृषि-जीवन की समृद्धियों से निकलकर इन नृत्यों ने पीढ़ियों को लांघा है। इनमें आदिम उल्लास का वह अंश भी चला आया है जिसे आज के तमाम आदिवासी नृत्यों में देखा जा सकता है।

कुछ वर्ष पहले मुझे 'समाज-कल्याण' मासिक के अंकों में भारत में प्रचलित लोकनृत्यों के प्रति परिचयात्मक लेखमाला लिखने का अवसर मिला था। उसकी सुखद प्रतिक्रिया से प्रेरित हो मुझे लगा कि भारतीय लोकनृत्यों के सम्बन्ध में हिन्दी तथा हिन्दीतर क्षेत्र के पाठकों और किशोर छात्र-छात्राओं के लिए सरल भाषा में एक स्वतंत्र पुस्तक की रचना की जाए। 'भारत के लोकनृत्य' उसी प्रेरणा का परिणाम है।

—श्याम परमार
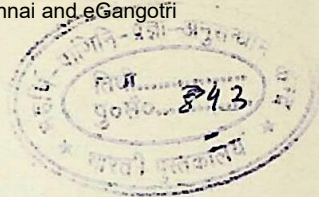
क्रम

1
उत्तरी क्षेत्र

काश्मीर

कहते हैं, बहुत पहले काश्मीर में कुछ विशिष्ट नृत्यों का प्रचार था। यह स्थिति कदाचित् इस्लाम के आगमन के पूर्व रही होगी। काश्मीर के प्राचीन साहित्य में नृत्य-सम्बन्धी अनेक उल्लेख मिलते हैं। इस क्षेत्र के शिल्प में भी कुछ नृत्य-मुद्राएं अर्द्ध-उत्कीर्ण अवस्था में प्राप्त हैं। इन सन्दर्भों से यही निष्कर्ष निकलता है कि काश्मीर में किसी समय समृद्ध नृत्यों का प्रचलन रहा होगा।

हाफिज़ाओं द्वारा किए जानेवाले नृत्यों के प्रति यह अनुमान किया जाता है कि वे सम्भवत: काश्मीर के पुराने नृत्यों से सम्बद्ध रहे हैं। देव-दासियों की भांति हाफिज़ाओं को भी पवित्र माना जाता रहा है। ये नर्त-कियां सूफियाना कलाम की गीति शैली पर नाचा करती थीं। इनके गीत 'हाफ़िज़ नग़मा' कहलाते हैं। इन नगमों की भाषा या तो काश्मीरी होती थी या फिर फारसी। चौदहवीं शताब्दी के लगभग कई रचनाएं इसी उप-योग के लिए लिखी गई थीं। कहते हैं, हाफिज़ाओं के नृत्य भावप्रधान हुआ करते थे। उनमें लोच और लालित्य होता था। कत्थक का भी दूरगामी प्रभाव उनपर था। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ तक हाफिज़ाओं के नृत्य खूब प्रचार में रहे। 1920 में महाराजा प्रतापसिंह ने उन्हें बंद करा दिया।

लोकनृत्यों की दृष्टि से भी काश्मीर की सुरम्य घाटी बहुत रंगीन है। **बचनगमा** नामक नृत्य में हाफिज़ाओं के नृत्य की झलक आज भी देखी जा सकती है। बचनगमा किशोर लड़कों का नृत्य है। नर्तक 'बच्चा' कहलाता है। बचनगमा सलामी से आरम्भ होता है। बच्चा घुटनों पर बैठकर धीरे-धीरे अपनी पीठ पीछे की ओर ले जाता है ताकि अन्त में उसका सिर ज़मीन

को स्पर्श कर सके। सलामी के बाद वह खड़ा होकर पद-संचालन करता है और कत्थक की तरह कुछ मुद्राओं को प्रदर्शित करता है। अधिकतर बचनगमा में 'छकरी' शैली के गीत गाए जाते हैं। मुख्य पंक्ति नर्तक के मुंह से निकलती है जिसे उसके साथी उठाते हैं। ये प्राय: बजैया होते हैं, जो संतूर, रबाब, घड़ा, तुम्बकनार, सारंग आदि बजाते हैं।

फसल कट जाने के बाद काश्मीर की स्त्रियां अपना प्रिय नृत्य रुफ़ (रोफ़) नाचती हैं। रुफ में नाचने वाली ग्रामीण स्त्रियां आमने-सामने दो पंक्तियों में खड़ी हो जाती हैं और एक-दूसरे के गले में हाथ डालकर लहर की तरह आगे-पीछे जाती हैं। यह बहुत ही सहज ढंग से होता है, मगर इसकी हर गति गीत से बंधी होती है। इसमें किसी वाद्य का उपयोग नहीं होता।

रमज़ान के महीने में भोजनादि से निवृत्त होकर मुस्लिम स्त्रियां रुफ का आनन्द लेती हैं। कभी-कभी इस नृत्य की भंगिमाओं में नारी के सहज सौन्दर्य की बहार नज़र आती है। रुफ का पूरा उठाव ईद की रात को आता है। नाचते हुए, स्त्रियों की एक पंक्ति दूसरी पंक्ति से मिलतो और बिना मुंह घुमाए लहर की तरह दो धाराओं में छिटक जाती है। कहा भी है कि 'रोफ करणे बसिवे आरस, गुलि लाल् थूर्य इयि मां'—अर्थात् टोलियां बनाकर रोफ नृत्य करो, शायद मेरा लाल गुलाब आ जाए। रुफ विशेष आकर्षण रखता है। इससे जुड़े हुए अधिकांश गीत प्रेम-सम्बन्धी होते हैं :

रोज़ बुलबुलो लोल च्योन आमो
आरपोशो चेर, क्यहो गोयो
अन्दर वन नय न्यदर मप्ययो···

—ए बुलबुल, तनिक ठहर, मैं प्रेम में जली जा रही हूं। ए आलू-बुखारे के फूल, मेरे प्रेमी, तुझे आने में देर क्यों हो गई ? कहीं तू जंगल में सो तो नहीं गया ?

हिकात युवा लड़कों और लड़कियों का मनोरंजनप्रधान नृत्य है। पंजाब के कीकली नृत्य की रुझान इसमें देखी जाती है। नाचने वाली जोड़ियां बांहें फैलाए आमने-सामने पंक्तियों के बीच से गुज़रती हैं और

अपने-अपने साथियों का हाथ थामकर सभी नर्तक गति में आते हैं। इस नाच की प्रधान उठान अंत में देखी जाती है।

काश्मीर के घुमन्तू वाट्टल घुमाल नाचते हैं। घुमाल पुरुषों का नृत्य है। नाचने वाले मूंगे और सीपियों से जड़े रंगीन कपड़े पहनते हैं। इनके सिर पर लम्बी-लम्बी नुकीली टोपियां होती हैं। ये लोग उत्सवों में शरीक होने के लिए जाते समय अपनी मंडली का झंडा गाड़ देते हैं और उसी झंडे के इर्द-गिर्द गोलाई में नाचते हैं। नाच के दौरान घुमाल नर्तक तरह-तरह की आवाज़ें मुंह से निकालते हैं। खास तौर पर काश्मीर के निशात-बाग, अनन्त नाग और अछबल में इन घुमन्तुओं का यह घुमाल नाच निश्चित तिथियों पर देखा जा सकता है।

मेले के अवसर पर काश्मीर के ग्रामीण युवक-युवतियां अपने सामर्थ्यानुसार सजधजकर चल पड़ते हैं। मेले में वचनगमा तो दीख ही जाता है, और भी नृत्यरूप संयोग से देखने को मिल जाते हैं। परम्परागत गीति-नाट्य बांड अर्थात् भांड या भांड पाथेर मेले के मौकों के अलावा अन्य अवसरों पर भी आयोजित होता है। इसका नटन पुरुषों द्वारा किया जाता है। मंडली में गाने वाला ग्युवस बोल, रुवाव बजाने वाला रुवाव बोल, सारंगवादक सारंग बोल तथा दहर (लोहे की सलाख जिसपर लोहे के छल्ले चढ़ाकर बजाया जाता है) बजाने वाला दहर बोल कहलाता है।

जम्मू का क्षेत्र भी लोकनृत्य की दृष्टि से कम उल्लेखनीय नहीं है।

लद्दाख सीमान्त प्रदेश है। इस भाग में अधिकतर बौद्ध धर्म के अनुयायी रहते हैं। तिब्बत से इस भाग का किसी ज़माने में व्यापारिक संबंध था। इसके नृत्यों की प्रकृति काश्मीर से एकदम अलग है। इसमें **पिशाच** नृत्य या **मुखौटा** नृत्य प्रमुख हैं। लद्दाख के ये नृत्य अधिकतर अनुष्ठानिक हैं। इन नृत्यों की अनुरूपता तिब्बत, भूटान और सिक्किम के कुछ नृत्यों से मिलती है।

पंजाब

पंजाब का इलाका नृत्य और गीतों में किसी से कम नहीं है। इस धरती के लोगों को ताल पर नाचने और गाने की सहजता प्राप्त है। चलत

की ताल इनके स्वभाव के अनुकूल होती है। नृत्य की बारीकियों और व्यक्ति-प्रदर्शन की अपेक्षा मिलजुलकर अपनी प्रसन्नता को अभिव्यक्ति देना पंजाब की संस्कृति में बद्ध-मूल है।

भांगड़ा पंजाब के पुरुषों का प्रसिद्ध नृत्य है। यह ऐसा नाच है जिस में हर कोई नृत्य के दौरान सम्मिलित हो सकता हैं, उम्र का कोई वन्धन नहीं। ताल को पैदा करने वाली हर चीज़ भांगड़ा के लिए वाद्य का काम करती है, मगर यदि ढोलक नहीं हुई तो भांगड़ा का जमाव ही असंभव हो जाता है। जब नई फसल आती है या त्यौहारों और उत्सवों की खुशी उमड़ती है तब एकत्रित समुदाय को उत्साह देने के लिए ढोलक की फड़क **भांगड़ा** को उभारने के लिए पर्याप्त है।

स्त्रियों का प्रसिद्ध नृत्य **गिद्धा** एक तरह से पुरुषों के भांगड़ा नृत्य का जवाव है।

गिद्धा में स्त्रियां गोलाई में नाचती हैं। इसमें सम पर आने के वाद मुख्य गीत-पंक्ति के उतरते ही स्त्रियां हाथ की तालियों पर तेज़ी से गिद्धा डालती हैं। इसमें मामूली ढोलक का उपयोग किया जाता है। गिद्धा के कई प्रकार हैं, जैसे **ब्यावला गिद्धा, तियान गिद्धा** आदि। व्यवला गिद्धा में एक लड़की दूल्हा और दूसरी दुल्हन वनकर अभिनयप्रधान गिद्धा डालती हैं। अक्षय तृतीया पर लड़कियां मनोरंजनार्थ तियान गिद्धा करती हैं।

भांगड़ा की वोलियों और गिद्धा की वोलियों में विशेष अन्तर नहीं होता। दरअसल वोलियां, संवाद या उक्ति की तरह असर करती हैं। बिना इनके न गिद्धा चमकता है, न भांगड़ा। गिद्धा की तरह पंजाव की स्त्रियों का एक दूसरा नृत्य है **लुड्डी**। इसमें तालियों की जगह उंगलियां चटकाई जाती हैं।

कीकली लड़कियों का उल्लेखनीय नृत्य है। यह क्रीड़ाप्रधान नृत्य है जो मेलों-ठेलों के समय किया जाता है। महाराष्ट्र के फुगड़ी नृत्य से यह बहुत मिलता-जुलता है। उत्सवों के अवसर पर अथवा फुरसत के समय लड़कियां कीकली के प्रति स्वतः उत्सुक हो उठती हैं।

संयोग की वात है कि पंजाव में भी **झूमर** नामक नृत्य प्रचलित है।

यह झूमर बंगाल या विहार के झूमर से अलग है। पंजाव का झूमर पुरुषों का नाच है। कुछ अंशों में इसको गुजरात के डांडिया या वनजारों के अन्ट्या खेल के नज़दीक समझा जा सकता है। प्रत्येक पुरुष अपने हाथ में छोटा-सा डंडा लेकर गोलाई में नाचता है और अपने साथी नर्तक के डंडे से अपना डंडा बजाकर ताल देता है। लक्षदीप के मछुआरों की तरह पंजावी झूमर में पुरुष कभी-कभी ज़मीन पर डंडा बजाकर भी गोलाई में नाचते हैं। नाचते वक्त नर्तक आवाज़ें करते हैं। भांगड़ा में भी जैसे ताल के साथ विचित्र ध्वनियां छोड़ना अच्छा भासित होता है, वैसे ही झूमर में भी पुरुष स्वतंत्रता लेते हैं। **बलोच झूमर** दूसरा भेद है। **जंगली झूमर** में डंडों का उपयोग नहीं किया जाता। इसमें खुले हाथों और मुट्ठियों से पुरुषत्व को नृत्य-संस्कार दिया जाता है। झूमर का एक और भेद है **चीना**। मगर यह नृत्य अब बहुत कम देखने में आता है।

नृत्य के छोटे-मोटे रूपों को चाहे हम स्मरण नहीं कर पाएं, पर इतना स्पष्ट है कि पंजाब के भांगड़ा और गिद्धा को कोई नहीं भूलता। ये दोनों ही नृत्य पंजाब के जातीय लोकनृत्य हैं।

हरियाणा

लगभग एक करोड़ आबादी वाले हरियाणा प्रदेश की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि राजस्थान और ब्रज के संस्कारों तथा पंजाब की संस्कृति और मौजीपन से समन्वित है।

हरियाणा के लोक-जीवन में राजपूतों की अनेक गाथाओं और ब्रज के सैकड़ों प्रभाव घुले-मिले हैं। मूल हरियाणवी बोली के अतिरिक्त इस राज्य के करनाल क्षेत्र के उत्तर में बिगड़ी हुई पंजावी, गुड़गांव के दक्षिण में ब्रजमिश्रित हरियाणवी तथा हिसार के दक्षिण में राजस्थानी का गहरा पुट स्पष्ट मिलता है। इसीलिए पंजावी के अनेक अभिप्राय (मोटिफ) और ब्रज के लोकाचार हरियाणा में पाए जाते हैं। यही कारण है, हरियाणा की लोक-कलाओं के सन्दर्भ में विचार करते समय हमें इस राज्य के लोकनृत्यों की अलग से कोई सुदृढ़ परम्परा नज़र नहीं आती। तब भी कुछ नृत्य अवश्य ही उल्लेखनीय हैं, जिनकी यहां चर्चा की जा रही है।

हरियाणा में स्त्रियां प्राय: पुरुषों के साथ नृत्य नहीं करतीं। डफ और घमाल इस राज्य के मुख्य लोकनृत्यों में स्थान पाते हैं। इनका प्रदर्शन कई बार लोकनृत्य-समारोह के अवसर पर राजधानी में भी किया जा चुका है। धोती और कुर्ता पहने पुरुष नर्तक सदैव अपनी नृत्यगति और उल्लसित भावों से दर्शकों को आकृष्ट करते आ रहे हैं।

यहां के कुछ नृत्यों पर रास का भी प्रभाव है।

डंडा नाच इस राज्य का अनुष्ठानिक नृत्य है जिसे ढोलक की थाप पर नाचा जाता है। एक किंवदंती के अनुसार इसका सम्बन्ध भगवान शंकर द्वारा किए गए काम-दहन से है। एक अन्य कथा के अनुसार गूगा चौहान के अनुयायियों ने गूगा के प्रति अपनी-अपनी आस्था व्यक्त करने के लिए सर्वप्रथम इस नृत्य का आयोजन किया था। यह नृत्य भाद्रपद की तृतीया या चतुर्थी को किया जाता है। इसके सिलसिले में वहुरंगी निशान गांव में घुमाए जाते हैं। भक्त नर्तक दंड को शीश झुकाकर पत्तों से बटी हुई रस्सी से स्वयं को धीरे-धीरे पीटने लगता है। ताल के साथ उसकी गति बढ़ती जाती है। समूचा प्रभाव तब किसी आदिम अनुष्ठान के अनुकूल जान पड़ता है।

छठी नृत्य भी अनुष्ठानिक है। **घोड़ी नाच** विवाह के समय विशेष रूप से किया जाता है। विवाह की रस्म सम्पन्न होने पर लड़की की विदाई के बाद अधिकतर स्त्रियां **घोड़ी** नाचती हैं। **घोड़ा नाच** अलग है जो फागुन की रातों में नाचा जाता है।

जब ऋतुएं आती हैं तो गांवों में नया आनन्द करवटें लेने लगता है। सावन के दिनों में वर्षा की फुहारें गीतों के बोल हवा में छिटकाती हैं। प्रेम-प्रसंग, चुटकियां, ननद-भौजाई के ढकोसले, झूले पर 'सासड़ की नाक तोड़ने वाली' पैंगों के साथ, गीतों के मुखड़े और छुटपुट नाच की रंगतें सदा ही जीवित रहने वाली बातें है। 'पांच कपड़े और तीन हथियारों' का जिक्र अक्सर हरियाणा के कथा-गीतों में आता है। डेरू वाद्य के साथ गूंजने वाली जहारपीर या गूगा अथवा अन्य पीरों की गाथाएं, सादुल्ला की महाभारत, जकड़ी, भरतरी और गोपीचन्द की गीत-कथाएं हरियाणवी के लोकपरक विश्वासों के प्रमाण हैं। हरदेवा, लखमीचन्द और दीपचन्द के

सांग, रसिया, झूले, तीजें, धमाले और रतवायी गीतों में हरियाणा के किसान का मन रमा है।

फाल्गुन में हरियाणा के दक्षिण-पूर्वी भाग में जब स्त्री और पुरुष रसिया गाते हैं और नृत्यों की मस्ती में उन्मुक्त होते हैं तो उस समय ब्रज की झलक दिखाई देती है। लोकनृत्यों के साथ स्त्रियां कई तरह के गीत गाती हैं। 'रस बगिया कितनी दूर महक मारे निबुअन की' या 'बावन गज की लहर सिमाई चावल चीण बंधाई हो' जैसे प्रेमगीतों का संबंध नाच के साथ जुड़ा हुआ होता है। रसिया गीतों में होली का समूचा रंग उभरता है। सोकण नामक एक गीत में पत्नी अपने पति को कांटेदार झाड़ी के समान समझती है, जिसकी न तो छाया है और न फल। सौत ले आने के कारण अब सिवाए कांटे चुभोने के वह दूसरा कोई काम नहीं करता।

लोकनाट्य सांग में हरियाणवी पुरुष अलग ढंग से नाचता है। मगर नक्कारे के साथ ग्रामीण जिस ढंग से नृत्य करते हैं, उनका अपना अलग ही प्रभाव है। गाते समय नर्तकमंडली एक ही पंक्ति बार-बार दुहराती है। इस तरह के नृत्य प्रायः छोटे-मोटे कथा-प्रसंगों को केन्द्र बनाकर भी किए जाते हैं। तीज के त्यौहार पर स्त्रियां अपने खास नृत्य करती हैं। होली पर नृत्यों की प्रतिस्पर्द्धाएं होती हैं। धमाल की धूम मच उठती है। डफ और मंजीरा बजते हैं। उलाहने बदले जाते हैं। धमाल खुले में नाचा जाता है। कई बार ऐसा समां बंधता है कि नर्तक अपने किसी साथी को नाचते-नाचते ऊपर उठा लेते हैं। कई बार यह भी होता है कि नाच में स्त्रियां भी आ जुड़ती हैं। सच तो यह है, होली ही ऐसा अवसर है जब हरियाणा के लोकनृत्य सम्पूर्ण प्रभाव के साथ व्यक्त होते हैं। कुछ गीतों के उद्धरण प्रस्तुत हैं जिन्हें हरियाणा में लोकनृत्यों के साथ गाया जाता है।

> उड़े हो गुलाल रोली, हो रसिया
> केसर कस्तूरी की चमचाई
> उड़े हो गुलाल...
> काला बहल जुड़ाइयां मैं थलस
> तले नै आईयां
> क्योंकर जीऊं काले के ब्याह दईयां...

हिमाचल प्रदेश

हिमाचल प्रदेश मेले-ठेलों की भूमि है। वर्फ से ढकी पहाड़ों की ऊंची चोटियों, घने देवदार वृक्षों तथा चन्द्रभागा, व्यास और रावी जैसी नदियों ने इस राज्य को अजीव औदार्य-सहजता दी है। सिरमौर, किन्नौर, लाहौल स्पिति और चंबा जैसे क्षेत्र हिमाचल प्रदेश की प्राकृतिक रमणीयता को और भी गाढ़ा बनाते हैं। बोलियों और वेशभूषा का वैविध्य, लोकजीवन में व्याप्त सदियों पुरानी मान्यताएं, रीति-रिवाज, रूढ़ियां और नए विश्वास इस राज्य की परिकल्पना को पहाड़ी और मैदानी संस्कृति से अनुरंजित करते हैं।

सादगी इस क्षेत्र के जन-जीवन को प्रकृति से मिली है। मगर निसर्ग की खुली गोद में भी आदमी बिना मेहनत और मशक्कत के नहीं रह पाता। इसी परिश्रम के सन्दर्भ में वह नाचता और गाता है। दिन का सफर पूरा होता है और पहाड़ों में गीतों की गूंज तैर जाती है। पहाड़-दर-पहाड़ होते हुए शब्द नाच की धुनों को आन्दोलित करते हैं।

सिरमौर-महासू की ओर के लोगों का एक नृत्य है—**नाटी**। नाटी गीत भी है और नृत्य शैली भी। इसमें नाचने वाली मंडली तालियां बजाते हुए गति को सहेजती है। पुरुष नर्तक रंगीन लिवास में होते हैं। मुद्राएं प्रदर्शित करने का दायित्व एक ही व्यक्ति पर होता है जबकि शेष व्यक्ति नृत्य की गति और गीत की धुनें उठाते हैं। यह आवश्यक नहीं कि नाटी नृत्य श्रृंगार-प्रधान हो। जौनसार क्षेत्र में जाकर यही नृत्यशैली वीर रसप्रधान नृत्य में परिणत हो जाती है। तब नर्तकों के हाथों में ढाल-तलवार होती है। ढोल और नरसिंगा ज़ोरों से बजाए जाते हैं। इस रूप में नाटी नृत्य का नाम हार हो जाता है। 'हार' शब्द का अर्थ हरण है। स्त्री-हरण पर युद्ध होते रहे हैं। नृत्य के साथ गाए जाने वाले इस तरह के युद्धगीत बुढ़ू कहलाते हैं। हार गाते समय नर्तक युद्धपरक ललकारें और ध्वनियां करते हैं। ढोलकिया अपनी ढोलक उछालते हुए स्वयं नाचने लगता है। हिमाचल के चंबा क्षेत्र में इसी नाटी का रंग फिर बदल जाता है। वहां नाटी गीत-रहित नाच की शक्ल धारण करता है। कुल्लू में इस नृत्य के साथ स्मृति-गीत गाए जाते हैं, जिन्हें साके कहते हैं। महासू का

पूर्वी भाग वघाटी कहलाता है। साका को वघाटी में झूरी कहते हैं।

चंबा के कुछ भागों की स्त्रियों में **डांगी** नामक नृत्य का प्रचार है। यह नृत्य धुरेही नामक गीत के साथ अक्सर किया जाता है। इसमें वाद्यों के वजाए गीतों को अधिक महत्त्व दिया जाता है। डांगी वृत्ताकार लोक-नृत्य है जिसमें नर्तक दल परस्पर बांहें मिलाकर नाचता है। धुरेही गीत वस्तुत: प्रश्नोत्तर शैली में होता है। इस गीत में एक हरिजन लड़की के प्रति किसी राजा का प्रेम-निवेदन निहित है। यह ज़रूरी नहीं है कि नृत्य का संबंध गीत के कथन से हो। गीत अपने-आप चलता रहता है और नाच अपने अंदाज़ में होता जाता है।

घोड़ायी चंवा की स्त्रियों का एक और उल्लेखनीय नृत्य है। इसमें स्त्रियां दो वृत्त वनाकर नृत्य करती हैं। शरीर के ऊपरी भाग को अर्द्ध गोलाई में घुमाते हुए प्रत्येक पदगति पर लोच देती हैं। नाचते समय ताल की संगति में बांहें उठाना, झुलाना और बारी-बारी से दोनों वृत्तों का गीतों को उठाना घोड़ायी नृत्य का सहज गुण है।

नाट, फुरेही और **फराटी** भी इस क्षेत्र के उल्लेखनीय लोकनृत्य हैं।

चंबा के स्त्री-पुरुषों ने जिन नृत्यों को अपनी परम्पराओं से जोड़े रखा है उनमें एक **झांझर** नृत्य है। यह शैली स्त्री-पुरुषों के संयुक्त नृत्य से संवंधित है। इसमें नृत्य का पहला वृत्त स्त्रियां बनाती हैं और वृत्त के वाहर वड़ा वृत्त पुरुषों द्वारा वनाया जाता है। झांझर सूरजमुखी फूल की तरह खिलता और सिकुड़ता है। गति में आने के बाद नाचने वाले अपनी निश्चित मुद्राएं परिवर्तित करते हैं। वाद्यों द्वारा इसकी लय बढ़ाई जाती है।

चंबा के उत्तर में पांगी के पहाड़ों से राजधानी में कई बार नर्तकों की टोलियां आई हैं। पांगी की स्त्रियां हाथ से बुने मोटे ऊन के पजामे पहने होती हैं। नाचते समय इनके शरीरों में पहाड़ों जैसा खम और हवा की थपेड़ से हिलने वाले पेड़ों-सी लोच होती है। चट्टानों के बीच से गुज़रते पानी-सी द्रुत भंगिमा पांगी नृत्यों की विशिष्ट मुद्रा है।

महासू के पास एक गांव है—सांगला। इस गांव के नाम से सांगला नृत्य प्रसिद्ध है। सांगला स्त्रियों और पुरुषों का मिला-जुला नृत्य है।

पहाड़ों में यह नृत्य देवी-देवताओं की आराधना के निमित्त किया जाता है। इस नृत्य के तीन भेद बताये जाते हैं—**बक्यांग, दक्यांग और क्यांग**। नाचते समय तीनों ही भेद एक-दूसरे में घुल-मिल जाते हैं।

लोकनृत्यों के ये तीनों रूप किन्नौर में भी यथावत् प्रचलित हैं। क्यांग स्त्रियों और पुरुषों का अर्धवृत्त नृत्य है। बीच में वाद्य बजाने वाले खड़े होते हैं और नृत्य के दौरान स्त्रियों और पुरुषों का नेतृत्व अलग-अलग व्यक्ति करता है। नर्तक अपने बाद तीसरे व्यक्ति का हाथ पकड़कर पंक्ति बांधता है। गीत के साथ पंक्ति घूमती है और नृत्य अपनी गति से घंटों चलता रहता है।

बक्यांग में नाचने वालों की दो से अधिक पंक्तियां होती हैं। नृत्य की भंगिमा मुंहा-मुंही होती है। यह नृत्य अधिकतर स्त्रियों द्वारा किया जाता है।

किन्नौर का **बोयांग्चू** मुक्त नृत्य है। इसमें वादकों के इर्दगिर्द पुरुषों का दल ही प्रायः नाचता है। कभी-कभी वृत्त के बाहर खड़ी स्त्रियां इस नृत्य को अपने गीतों से उभार देती हैं। इससे पुरुषों को नाचते समय बढ़ावा मिलता है और उनके मुंह से उल्लास की ध्वनियां छूटती हैं।

पहाड़ों में गडरियों को गद्दी कहते हैं। गद्दी स्वभाव से सीधे, परिश्रमी और नम्र होते हैं। कांगड़ा और चंबा के गद्दी-नाच बहुत चर्चित रहे हैं। बांहें उठाए गद्दी नर्तक नाच के झुंड में शरीक होते हैं। उनका पद-संचालन निश्चित तालों से बंधा होता है। नाच के साथ बड़े ढोल और मारू बाजे बजाए जाते हैं। गोलाई में नाचने के कारण हर कोई आसानी से उनके नृत्य का अंग बन सकता है। थक जाने पर वृत्त से बाहर निकलना सदैव सरल होता है। गद्दियों के नृत्यगीतों में प्रायः प्रेम-प्रसंगों के उल्लेख मिलते हैं। गाते हुए गद्दियों का सामूहिक स्वर ढोल और नरसिंगों की ध्वनियों में डूब जाता है। फिर भी समूचा ध्वनि-गुम्फ पहाड़ों में गूंजता रहता है।

नोखू नामक एक गद्दिन पर कांगड़ा का राजा संसारचंद मुग्ध हो गया था और बाद में उससे विवाह कर लिया था। दोनों की यह प्रेमगाथा केवल कांगड़ा और चंबा की उपत्यकाओं में ही नहीं, सम्पूर्ण हिमाचल

प्रदेश में गायी जाती है ।

कण्ढिया दे बन्ने राजा हेड़ा जो चलया
लई वो घड़ोलू पानियें जो आई
चार सिपाही राजे गद्दनी जो भेजे
गद्दन पकड़ मंगाई वो मोरिया वांक्या गद्दिया

छड़ी देयां गद्दनें चोले दा डोरे
रेशम पट पहनी लेयां वी मेरिये वांकिए गद्दने
रेशमा पट तोरियां रानियां जो सजदा
मिंजो चोला डोरा प्यार वो मेरेया वांक्या गद्दिया

छड़ी देयां गद्दनी लुहाटुए दा खाना
सुन्ने दे थालां विच खा वो मेरिये वांकिए गद्दनी
सुन्ने दे थाल तेरियां रानियां जो सजदे
मिंजो लुहाटू प्यारा वो मेरेया वांक्या गद्दिया

सचमुच दसयां वो प्यारिए गद्दनी
कुसी दी बुरी ता नी आंदी वो मेरिये वांकिए गद्दनी
थख थख बुरी मिंजो छुलुआं ओन्दी
गद्दिए दी लगी जांदी छुरी ओ-मेरिया वांक्या गद्दिया

गीत का अर्थ है :

घाटी के किनारे राजा शिकार खेलने निकला
घड़ा उठाये गद्दिन पानी भरने आई
राजा ने चार सिपाही गद्दिन के पास भेजे
गद्दिन को पकड़ मंगवाया
ओ मेरे वांके गद्दिया।

ओ गद्दनिए, इन चोले और डोरों को छोड़ दे
ओ मेरी सुन्दर गद्दनिए, तू रेशम के कपड़े पहन ।
रेशम के कपड़े तो तेरी रानियों को शोभा देते हैं।
मुझे तो मेरा चोला और डोरा ही प्यारा है ।

ओ मेरे बांके गद्दिय।

आ गद्दनिए, तू लोहे के कटोरे में खाना छोड़ दे
ओ मेरी सुन्दर गद्दनिए, तू सोने की थालियों में खाना खा।
सोने के थाल तो तेरी रानियों को शोभा देते हैं,
मुझे तो लोहे का कटोरा ही प्यारा है।
ओ मेरे बांके गद्दिया।

सच-सच बता ओ प्यारी गद्दनिए
तुम्हें किसी की याद तो नहीं आती—ओ मेरी प्यारी गद्दनिए।
मुझे कुछ-कुछ अपने बकरी के छोने की याद आती है
अपने गद्दी की याद तो छुरी की तरह काटती है।
ओ मेरे बांके गद्दिया।

उत्तर प्रदेश

उत्तर प्रदेश शब्द के साथ कई चित्र उभरते हैं : नदियों और पहाड़ों के चित्र, विभिन्न संस्कारों और संस्कृतियों के चित्र, बोलियों और उत्सवों के चित्र तथा ऐसे अनेक चित्र जो कुल मिलाकर उत्तर प्रदेश को एक विशिष्ट चरित्र प्रदान करते हैं।

एक चित्र सामने आता है जौनसार बावर के मेलों का। हिम से ढके हुए पर्वत-शिखर, तेजी से बहती नदियां और हरी-भरी घाटियों के बीच छोटे-छोटे गांव। लोगों में सहज उत्साह है। वाद्य बज रहे हैं। शोर-शराबा है, मगर फिर भी नृत्य और गीत बन्द नहीं हैं। पांडवों की पूजा हो रही है। लगभग एक सप्ताह से यही हो रहा है। आज अन्तिम दिन है। नाचते-गाते लोग द्रोपदी और पांचों पांडवों को साथ लेकर बड़े मैदान की ओर जा रहे हैं। मैदान आ गया। सबसे पहले भीमसेन ने मैदान में नाचना शुरू किया, फिर एक-एक कर सभी पांडव नाचने लगे। द्रौपदी भी क्यों चुप बैठे ! उसने भी नृत्य करना आरम्भ कर दिया। यह पांडव नृत्य है। जौनसार बावर के दो और नृत्य जैता और जद्दा भी हैं जिनमें स्त्री-पुरुष दोनों मिल-जुलकर सम्मिलित होते हैं।

गढ़वाल में भी पांडव नृत्य करती टोलियां अक्सर दिखाई पड़ती हैं। नृत्य में गति आती है तो स्वर उभरता है :

हां जैती मां रला पांच पांडवूं,
धर्म वाला कुंती का लाडला राजा,
धर्म युधिष्ठिर होलो ज्योठो भाई,
तव होलो वीर पुत्र अरजुनऽ,
तव वीर वायु पुत्र सेनऽ, होला नकुल सहदेव लाडिला राजा,
पंडौं की होली मल्यो जसो टोलऽ,
होलो धिड्डयं को जनो डारऽ।

और पांडव आवेश में आकर करतव दिखाते हैं, दर्शक दंग रह जाता है। भूत-प्रेतादि को भगाने के लिए रात्रि में पांडव कंकड़-पत्थर से पटी उस ऊबड़-खाबड़ घाटी में इधर-से-उधर दौड़ लगाते हैं। दो-दो मंज़िलें मकानों के ऊपर से नीचे कूदते हैं और चोट का कोई नाम नहीं। फिर पांडव भीम के कारनामे तो अद्‌भुत ही होते हैं। दो-दो, तीन-तीन कच्चे-कच्चे कद्दू खा जाना उनके लिए मामूली बात है। जन-समुदाय के शीत-निवारण के लिए जलती अग्नि में कूद पड़ते हैं। उसमें पड़े लोहे के सब्बल को, जो तपकर लाल हो चुका है, वे अपनी छाती पर पीटते हैं, जिह्वा से चाटते हैं और इस भारी सब्बल को इस प्रकार घुमाते हैं मानो वह मामूली-सी छड़ी हो।

उत्तर प्रदेश के नृत्यों में **थाली नृत्य** का उल्लेख आमतौर पर किया जाता है, जो गढ़वाल, कुमाऊं और अन्य पहाड़ी क्षेत्रों में भी पाया जाता है। नाचने वाला, चाहे स्त्री हो या पुरुष, डमरू, तुरही और ढोल की ध्वनियों पर अपनी उंगलियों पर थाली नचाकर खुद भी गति से नाचता है। गढ़वाल का एक आकर्षण **जागर** अथवा **घड़्याल** नृत्य है।

ऊपर के क्षेत्र में जहां केदार क्षेत्र पड़ता है, स्त्रियां चंवर डुलाकर **केदार** नृत्य करती हैं। जिस तरह जागर में देवताओं का आह्वान किया जाता है, उसी तरह केदार नृत्य में नर्तक केदार स्वामी का स्मरण करते हैं। जागर में एक और गुंजाइश है। नर्तक देवता के स्वभावानुसार अपने

नृत्य को रूप दे सकते हैं। नृसिंह, कालिका, भैरव आदि की कल्पना पर आधारित जागर में रौद्र भाव स्पष्ट देखने में आते हैं। इसी हिस्से में प्रचलित **नागर्जा** और **अछरी** (अप्सरा) नृत्य कोमल भावों से अनुरंजित होते हैं। मनोरंजन के लिए गढ़वाल और पिथौरागढ़ में **थाड्या** नाचते हैं। इसे **चाचरी** नृत्य भी कहते हैं। यह घर-आंगन का नृत्य है, मगर उत्सवों और मेलों के अवसर पर **जातरा** की धूम रहती है।

वसन्त पंचमी के साथ ही **झुमैलो** शुरू हो जाता है। बांहों में बांहें डालकर कुमारी लड़कियां इसमें भाग लेती हैं। ससुराल में नववधुएं इसके द्वारा मायके की स्मृतियां पिरोती हैं। मां से मिलने की इच्छा उनमें प्रबल हो उठती है।

> ऋत बौड़ी, आइने हे झुमैलो
> दांयी कोसी फेरी हे झुमैलो···

पुरुषों का **चौफुल्ला** इसका दूसरा पक्ष है। यह भी सामूहिक नृत्य है है और उत्तर प्रदेश में इसकी कई शैलियां मिलती हैं। **मयूर** नृत्य उन्हीं शैलियों में से एक है।

वृत्त अथवा अर्धवृत्त से **छोपती** आयोजित होता है। इसमें कमर के पीछे हाथ गुंथे होते हैं। यह नृत्य भी बड़ा दिलचस्प है।

ब्रज क्षेत्र में **रास, रासक, दंड रासक** और **झूला** हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं। नगारे के साथ और जगह **थड़ा** होता है। कुमाऊं में मिलजुलकर **झोरा** नाचा जाता है। **छपेली** इसी भाग का प्रेम-नृत्य है।

नौटंकी में नगारा गरजता है, जिसमें लोकनृत्यों के कई रूप देखने में आते हैं। अहीर, कहार, डोम, गड़रिया, पासी सभी नाचते हैं। आल्हा गाने वाले **अल्हैतों का नाच** इधर उत्तर प्रदेश में खूब चमका है। इस नृत्य में वीर भावों को व्यक्त करना आसान है।

गढ़वाल में और भी अनेक नृत्य प्रचलित हैं: **फेरा, घाघरा, चौपाल, चौक** आदि। सीमान्त पर स्थित एक गांव में **डांगर्या आसन** नामक नृत्य बहुत प्रसिद्ध है। इसे भादों में सेलकू नामक उत्सवों के समय किया जाता है। यह बहुत विचित्र नृत्य है। नर्तक जब अपने पूरे भाव में आता है तो लोहे के तेज़ धारवाले शस्त्र पर चढ़कर नाचता है, और बिना आहत हुए

नाचता रहता है। उद्धत नृत्यों में **रणसो** और **जंगबाज़ी** का नाम और जोड़ा जा सकता है।

सावन में **झूला** नृत्य और बादलों के चढ़ने पर **कजरी** का नाचा जाना उत्तर प्रदेश के लिए साधारण बात है। कजरी की धुन तो अब शास्त्रीय संगीत में भी बसने लगी है। मिर्ज़ापुर की कजरी प्रसिद्ध है।

होली आती है तब उत्तर प्रदेश की मस्ती गज़ब की होती है। लोक-नृत्यों के लिए यह उन्मुक्त मौसम होता है।

2

पूर्वी और उत्तर-पूर्वी क्षेत्र

उड़ीसा

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में कर्नल ई० टी० डाल्टन ने अपनी पुस्तक 'डिस्क्रिप्टिव एथ्नोलॉजी ऑफ बंगाल' में उड़ीसा के जुआंग नामक आदिवासियों के एक लोकनृत्य का आंखों देखा वर्णन इन शब्दों में किया है :—

"जुआंग लड़कियां रात्रिनृत्य के लिए मशालों के उजाले में आईं। उनके आगमन का प्रभाव आदिम था। लड़कियों ने गोलाई में नाचना आरम्भ कर दिया। उन्होंने एक-दूसरे को शृंखलाबद्ध किया हुआ था। लड़कियों के बीच में एक पुरुष गा रहा था। उसके गीत पर लड़कियां नाचते हुए वृत्त को गतिशील बनाए हुई थीं।"

सौ वर्ष पहले किसी विदेशी के लिए ग्रामों या जंगलों में निवासियों के रीति-रिवाज़ या गीत-नृत्य आदि को सही रूपों में देख-समझ पाना यकायक संभव नहीं था। मगर डाल्टन हतोत्साहित नहीं हुआ। कुछ समय तक इस विषय में उत्साह दिखाने के बाद उसे उड़ीसा के अनेक लोकनृत्य देखने को मिले। उसने एक ऐसा नृत्य भी देखा जिसमें जुआंग लड़कियां पंक्तियों में खड़ी हो जातीं और सामने वाली पंक्ति में खड़ी लड़कियों के कंधों पर पीछे वाली लड़कियां अपने दाएं हाथ रखकर बदन झुलाते हुए नाचती थीं। उसने गलबहियों वाला नाच भी देखा था जो उसके अनुसार कोल आदिवासियों के एक नाच के अनुरूप था। पेड़ से तोड़े हुए ताज़े हरे पत्तों को शरीर पर बांधकर तथा रीछ की तरह बनैली भंगिमाएं दिखाते हुए किया जाने वाला नृत्य किसी समय उड़ीसा के आदिवासियों में बहुत

प्रचलित था। अब भी उसके चिह्न मिलते हैं। कपोत-युग्म की मुद्रावाला जुआंग नाच बहुत आकर्षक माना जाता है। वन्य पशु-पक्षियों की अनुरूपता हरिण-नृत्य, कच्छप-नृत्य और चील-नृत्य में प्रकट होती है।

उड़ीसा के कोरापुट और गंजाम ज़िलों में सावरा आदिवासी, जिन्हें शबर भी कहते हैं, बड़ी तादाद में मिलते हैं। इनके लिए नृत्य अनुष्ठान की तरह हैं। इसलिए इनमें नृत्यों की उत्पत्तियों के बारे में कई तरह की विचित्र कहानियां मिलती हैं। बोंडा और कंध आदिवासियों की भांति शबरों के नृत्य प्रायः जुलूस की शक्ल में उभरते हैं। विवाह के बाद दूल्हा अपनी पत्नी के साथ नाचते हुए घर लौटता है। उत्सवों या फसल कट जाने के बाद, जब भी ऐसे अवसर आते हैं, नाच एक आवश्यक मनोरंजन हो जाता है। नाच में ये आदिवासी अपना शरीर खुला छोड़ देते हैं। भुजाएं हवा में उछाली जाती हैं। पैर बजाए जाते हैं। कंधों और पुट्ठों को झटका दिया जाता है। किसी के हाथ में मोरपंख होते हैं। किसी के हाथ में पेड़ की डाली। तलवार अथवा डंडे भी किन्हीं के हाथों में होते हैं। ढोल की धुन चलती रहती है और ताल के साथ चीखना या सीटी बजाना वर्जित नहीं समझा जाता। गौर नामक अनुष्ठान के समय, जो कि मृत संस्कार का एक अंग होता है, नृत्य आवश्यक होता है। उसमें बकरे की बलि नृत्य का ही अंग समझी जाती है।

विवाह के अवसर पर शबर बहुत सुन्दर नृत्य करते हैं। ग्रामीण ढंग की सारंगी इनके हर नृत्य के साथ बजाई जाती है। गोलाई के नाच हों या दो पंक्तियों के नाच, दोनों में सारंगी बजाने वाला साथ-साथ नाचता है।

कंध आदिवासी अनुष्ठानों के नाचों में अपने शरीर में देवता उतारते हैं। इन नाचों में पूर्वज, मृतक और अन्य शक्तियों को प्रसन्न करने की कामना बद्ध होती है। उड़ीसा के लोकनृत्यों में कई नृत्य ऐसे भी हैं जिनमें रहस्यपूर्ण अनुष्ठान किए जाते हैं।

प्राचीन काल में उड़ीसा के राजाओं ने गंगा से लगाकर गोदावरी नदी तक पैका सैनिकों की सहायता से राज्य-विस्तार किया था। वे सैनिक तो अब रहे नहीं, मगर उनके युद्ध-नृत्य की परम्परा उड़ीसा के खुर्दा, नयागढ़

और पुरी के निकटवर्ती कुछ भागों में शेष रह गई । इन भागों में प्रायः पैका अखाड़े मिलते हैं जिनमें **पैका** नृत्य का भी अभ्यास किया जाता है। पैका में युवा नर्तक धोती या जांघिया पहने होते हैं तथा पगड़ी में मोरपंखा खोंस लेते हैं। मिट्टी का ढोल तिकुरा और चंगु वाद्य की ध्वनि के साथ युवा नृतकों की एक पंक्ति ढाल-तलवार लेकर मैदान में आती है। फिर सभी नर्तक घोष करते हैं और दो भागों में बंट जाते हैं। एक पंक्ति हमलावर का रूप ग्रहण करती है तथा दूसरी बचाव-पक्ष की गतियां प्रदर्शित करती है । पैका में तलवार चलाने की कई विधियां गुंफित हैं । महत्त्वपूर्ण अवसरों पर पैका में असली तलवार भी कुछ नृतकों के हाथ में दे दी जाती है जो कुशल होते हैं।

उड़ीसा का सर्वाधिक प्राचीन लोक नृत्य है—**डंडा नाट**। डंडा नाट कई अनुष्ठानों से सम्बन्धित नृत्य है । चैत्र पर्व के अवसर पर यह विशेष रूप से नाचा जाता है। इसका एक रूप हरियाणा में भी मिलता है। इसी मौके पर उड़ीसा में **छाऊ, पटुवा** और **चैतीघोड़ा** आदि नृत्य भी किए जाते हैं।

डंडा द्वारा लोकनर्तक शिव-पार्वती का आह्वान करते हैं । यह अनुष्ठानिक आयोजन मध्य प्रदेश के गोंडों में **मेघनाद**, बिहार के छोटा-नागपुर क्षेत्र में **मंडा**, बंगाल में **चड़क पूजा** एवं **शिवेर गाजन** तथा उड़ीसा के ही अन्य भागों में **झामूनाट, झानीजात्रा, पटुआजात्रा उदारपरब, पान संक्रान्ति** आदि धार्मिक महोत्सवों के नाम से जाना जाता है।

उड़ीसा में, बताया जाता है, डंडा नाट की उत्पत्ति कदाचित् छठी या सातवीं शताब्दी में हुई जबकि वहां कला और संस्कृति पर तंत्रवाद का गहरा प्रभाव पड़ा । शैवमत की पाशुपत धारा के प्रवर्तक अपने हाथ में 'लागुड़ा' (डंडा) रखते थे, इसलिए वे 'लागुदिसा' या 'लाकुलिसा' कहे जाते हैं। शैव मतावलम्बी भक्तों को 'दांडी' कहते हैं, क्योंकि वे भी हाथ में डंडा रखते थे।

डंडा प्रारम्भ करने के पहले नृत्य भूमि में दो डंडे गाड़ दिए जाते हैं जो उमा-महेश्वर के प्रतीक होते हैं । आम लोग उन्हें **गोरा बेटा** कहते हैं। डंडा नाचने वाले भक्त कहलाते हैं। दर्शक भी भक्त होते हैं। नर्तकों की

संख्या कुल तेरह होती है। मुख्य नर्तक पटभक्त होता है। आयोजन के पहले सभी नर्तक 'कामना घर' नामक एक अलग झोंपड़े में रहते हैं। वहां तीन सप्ताह तक दीपक जलाया जाता है। नृतक इस बीच एक ही समय भोजन करते हैं। भोजन के समय वाद्य बजाए जाते हैं ताकि मनुष्य की आवाज़ उनके कानों में न पड़ सके। यदि कोई भी शब्द कान में पड़ गया तो वे भोजन करना बंद कर देते हैं। डंडा नाचने वाले ये भक्त गांव-गांव आमंत्रित किए जाते हैं। ये नर्तक तलवार की धार पर चलते हैं, आग में चलते हैं, शरीर में लोहे की सलाखें खोंस लेते हैं और अनेक कठोर करतब दिखाते हैं।

मयूरगंज, सुन्दरगढ़, सम्बलपुर, धेंकानल आदि क्षेत्रों में **करमा** नाचा जाता है। मयूरगंज में स्त्रियां इसे गोलाई में नाचती हैं। मर्दों की टोली मांदल, धुमसा, ढोल, छड़छड़ी बजाकर गाती है। लड़कियां हाथों में हाथ बांधकर धीरे-धीरे झूमती हैं, कमर झुलाती हैं और सर्पभंगिमा से घुमाव लेती हैं। इनके नृत्यों में कुछ बैठकी भंगिमाएं भी होती हैं। साथ में गाये जाने वाले गीत प्रायः झूमर नाच के ही होते हैं। सम्बलपुर के कुछ आदिवासियों में स्त्री-पुरुष मिलकर करमा नाचते हैं, मगर दोनों की अलग-अलग पंक्तियां होती हैं।

करमा भाद्रपद शुक्ल एकादशी से शुरू हो जाता है। करमा, करम देवता या भाग्य देवता की आराधना से सम्बन्धित नृत्य है। धेंकानल और सम्बलपुर में इसे करमसानी देवी का नृत्य माना जाता है। करमा एक ऐसा नृत्य है जो भारत के मध्यवर्ती क्षेत्र की अनेक आदिवासी जातियों में मिलता है। मध्यप्रदेश और बिहार के कुछ आदिवासियों में भी यह बहुत प्रचलित है।

केला-केलूनी उड़ीसा की केला नामक घुमन्तू जाति का नृत्य है। केला मूलतः सपेरे हैं। ये पक्षी पकड़ते हैं और नृत्य को पेशा बनाकर घूमते रहते हैं। केला छुड़की बजाता है और केलूनी कमर हिलाकर नाचती है। बजैया भी साथ-साथ नाचता है। यह केवल जोड़ी नृत्य है। इसके अपने अलग गीत होते हैं जिनमें प्रायः प्रेम और परिहास का उल्लेख होता है। केला-केलूनी नृत्य धीरे-धीरे उड़ीसा में लुप्त हो रहा है।

सर्वत्र लोकप्रिय **काठी** नाच के उड़ीसा में दो रूप मिलते हैं। एक लम्बी काठी का नृत्य और दूसरा छोटी कोठी का नृत्य। लम्बी काठी वाला नृत्य पशुपालकों द्वारा दशहरा और गोवर्धन पूजा के समय किया जाता है। छोटी काठी का नाच मयूर-गंज, बोलनगिर आदि स्थानों की अनुसूचित जाति के लोग करते हैं। बोलनगिर में इसे **कलंगा** नाच कहा जाता है जबकि इसमें नर्तक करमा नाच का वेश धारण किए होता है।

घंटा पटुआ नामक लोकनृत्य की तुलना मैसूर में प्रचलित घोड़ी नाच से की जा सकती है। उड़ीसा में इसका सम्बन्ध सरलादेवी की पूजा से है। नर्तक, जिसे सेवक कहते हैं, स्त्रीवेष धारण कर अपने सिर पर फूलों से सजा घट रखता है। यह घट लकड़ी के एक चौखटे में बंधा होता है जिसे सेवक अपने कंधों पर रस्सी से बांध लेता है ताकि उसके दोनों हाथ खुले रह सकें। वाद्यों में ढोल और घंटा का उपयोग किया जाता है। घंटा पटुआ नर्तक दो या तीन की टोली में गांवों में घूमते हैं। वे चैत्र पूर्णिमा के एक महीने पूर्व अपने स्थान से चलते हैं, और अनेक गांवों का चक्कर लगाकर लौट आते हैं।

मछुआरों का एक नृत्य है—**चैती घोड़ा**। यह नृत्य बासेली देवी की आराधना में किया जाता है। कहते हैं, बासेली देवी का सिर घोड़े का है। शरीर पर बांस का घोड़ा बांधे हुए नर्तक के साथ राउत और राउतानी गाते और नाचते हैं। कभी-कभी इस नृत्य में कोई हंसोड़ पात्र भी सम्मिलित हो जाता है।

चंगुनाट सुन्दरगढ़ और मयूरगंज के भुईजन, बाथुड़ी, खरिया आदि जातियों का स्त्री-नृत्य है। इसमें पुरुष गाते और चंगु बजाते हैं। चंगु तम्बूरे की शक्ल का वाद्य होता है। इस वाद्य को बजाने के साथ पुरुष कई तरह की ध्वनियां निकालते हैं, कूदते-फांदते हैं, चक्राकार नाचते हैं। स्त्रियां सिर ढककर केवल हाथ के चूड़े खनकाती हुई बैठकी नाच करती हैं। बीच-बीच मं आगे-पीछे शरीर को झुलाती जाती हैं।

घूमरा नृत्य युवाओं द्वारा छाती पर घूमरा, जो कि एक खास ढंग का ढोल होता है, बांधकर किया जाता है। इसे हरिजनों की शादी में दूल्हा-दुल्हन के आसपास नाचा जाता है।

अन्य लोकनृत्यों में **ढलकायी** और **मेघा** का उल्लेख किया जा सकता है। मेघा मुखौटा लगाकर नाचा जाता है। उड़ीसा के समुद्रवर्ती क्षेत्र में दशहरा, कालीपूजा, शाहीयात्रा आदि के समय जुलूस में **मेघा** नृत्य आम तौर पर देखा जाता है। ढलकायी नृत्य के कई रूप हैं, जिनमें मुख्य हैं— **मायल जाड़ा, रसार केल, गुंजी कूटा, जामुदाली, बाकी, झुलकी, सइन-लाड़ी** आदि। अर्धनग्न वनकुसुमों के आभरणों में **झूमर, जाईफूल, डालो-भोगा** जैसे नृत्य किए जाते हैं।

बिहार

18वीं शताब्दी के एक यूरोपीय यात्री क्राफोर्ड ने बिहार के लोगों के लिए यह लिखा था कि "वे सारी रात नाचने, गाने और संगीत सुनने में बिताते हैं।"

जहां तक लोकनृत्यों का सम्बन्ध है, बिहार के नृत्य अपनी आदिम सादगी और विशिष्ट संस्कृति की छाप के कारण सदैव पसन्द किए जाते रहे हैं।

सांस्कृतिक दृष्टि से बिहार का मिथिला क्षेत्र अत्यन्त समृद्ध है। ग्या-रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में कर्नाटक के नारायणदेव ने यहां अपना राज्य कायम किया था। परिणामस्वरूप, मिथिला का क्षेत्र दक्षिण भारत की जीवन्त कला के सम्पर्क में आया। पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन में भी ऐसी परम्पराओं का सूत्रपात हुआ कि लोककलाएं जनजीवन का अभिन्न अंग बन गईं। यहां तक कि कवि विद्यापति के अनेक पद ग्रामीण स्त्रियों के लोकगीतों में घुल-मिलकर लोक-संगीत और नृत्यों की थाती बन गए। जयदेव के 'गीत गोविन्द' से भी बिहार की कलाएं अप्रभावित नहीं रहीं। लोकपरक नृत्यों का उससे प्रभावित होना स्वाभाविक था। पन्द्रहवीं शताब्दी के पश्चात् मिथिला में विद्यापति के पदों को गाकर नृत्य करने का रिवाज़-सा चल पड़ा। **नचारी** नामक नृत्य आज भी इसका स्मरण दिलाता है। फाग, चैता और पूरबी धुनों का सहारा लेकर विद्यापति के अनेक पदों पर नृत्य संयोजित किए गए। **जट-जटनी** जैसे गीत-नृत्य से सम्पृक्त नाट्य

रूप के साथ मिथिला की स्त्रियों के अपने कई नृत्य हैं।

विहार का लोक-जीवन वहुत कम शहरी है। खेतिहर जातियों और आदिवासियों के मेल से इस राज्य की लोक-संस्कृति मुखरित हुई है। उरांव, संथाल, हो, खरिया और मुंडा आदिवासियों के सभी नृत्य और गीत, स्त्रियों और पुरुषों द्वारा सह-संयोजित होते हैं। ये समूह में नाचते-गाते हैं।

छोटा नागपुर के नीचे की ओर गांवों में हिन्दू और आदिवासी कलाओं की धाराएं आपस में प्रभावित होकर चलती रही हैं। एक ओर ठेठ आदिवासी ग्रामीण नृत्य मिलते हैं तो दूसरी ओर सरायकेला का विकसित छाऊ भी उपलब्ध है। छाऊ में नागरिक स्पर्श स्पष्ट है। छाऊ का अर्थ है मुखौटा। छाऊ में प्रत्येक नर्तक चेहरे पर मुखौटा लगाकर नाचता है। यह ध्यान देने की चीज़ है कि छाऊ के कुछ रूपों को **रोगीन** (रंगीन) या **मेल** कहा जाता है जो वस्तुतः कथावृत्त-विहीन समूहनृत्य हैं। छाऊ की यही परम्परा संयोग से उड़ीसा के मयूरभंज में भी विकसित हुई। इसके अतिरिक्त इन्हीं मैदानी ग्रामों में **नचनी** और **नटुआ** नृत्य की परम्परा भी उपलब्ध है। प्रायः मेले-उत्सवों में इन नाचों को देखा जा सकता है। नचनी स्त्री नर्तकी होती है। उसके साथ नाचने वाला पुरुष **'रसिक'** कहलाता है। नटुआ में दो नर्तक होते हैं, जिनमें एक व्यक्ति आदिवासी और दूसरा गैर-आदिवासी होता है।

आर्चर ने बिहार के उरांव आदिवासियों के नृत्यों की वहुत सराहना की है। उसके अनुसार, उरांवों में **सरहुल, करमा, जातरा, जदुर, धुरिया, माठा** और कतिपय विवाह-नृत्य विशेष उल्लेखनीय हैं।

जब ऋतुएं अनुकूल होती हैं तब इन आदिवासियों के जीवन में उत्सवों और पर्वों के अवसर बहुत महत्त्वपूर्ण हो उठते हैं। वसंत आते ही उरांव और मुड़ा सरहुल के लिए तैयार हो जाते हैं। भादों लगते ही रांची के आदिवासी क्षेत्र में करमा की धुनें उठने लगती हैं। 'करम' महोत्सव भारतीय आदिवासियों के एक बड़े अंश को उनके अतीत-सम्बन्धों से सम्पृक्त करता है। करमा नृत्य उड़ीसा के गदबा और परजा आदिवासियों में भी मिलता है। इसे हम मध्यप्रदेश के गोंडों में भी पाते हैं। करमा पर्वों का

राजा है। संथाल इसे 'कराम' कहते हैं। करमा में पुरुषों की आवाज़ें नारी के प्रति चिरंतन पुकार की प्रतीति कराती हैं। नारी के नृत्य बार-बार पुरुष की ओर झुकते हैं।

बिहार में संथाल आदिवासियों की संख्या अधिक है। ये सीधे-सादे लोग जन्म से ही नाचने-गाने का शौक रखते हैं। समूची जाति ही नाचती है। माघी परव, दसाई परब (दशहरा और दुर्गापूजा) और बापरब (होली) पर ये खूब नाचते हैं। माघी परब मकर संक्रांति पर पड़ता है। इस अवसर पर ये **बुरु** नामक विशेष नृत्य करते हैं। होली के समय **झीका** और **डांगा** नाचते हैं।

बिहार के उरांव और मुंडा आदिवासियों में करमा के अतिरिक्त **जदुर** और **जातरा** नृत्य विशेष प्रचलित हैं। जदुर का पर्व अप्रैल के महीने में आता है। हांडिया नामक शराब पीकर ये रात-भर नाचते हैं। वर्षा के पहले और उसकी समाप्ति पर जातरा नाचा जाता है। पुरुष आदिवासी केवल **पैका** या **पैकिहा** नाचते हैं। यह वस्तुतः युद्ध-नृत्य की तरह है। इसके पुरुषों के हाथों में ढाल-तलवार होती है। पैका द्रुतगति से नाचा जा-ा है। यह नृत्य उड़ीसा में भी मिलता है।

प्रायः सभी आदिवासी जातियां गोला बनाकर नाचती हैं। हाथ से हाथ बांधकर आसानी से गोला बना लिया जाता है। सरहुल और करमा नाचने वाली युवतियां अर्द्धवृत्त में नाचते हुए भी गोलाई में भी घूमती हैं। **डोमकच** और **माथा** में नागपुरिया उरांव यही करते हैं। मुंहामुंही पंक्तियों में नृत्य करने वाली टोलियों की गति भी गोलाई से नियोजित होती है। उरांव का **धुरिया** नृत्य इस सन्दर्भ में तनिक अलग है। उसमें केन्द्र से परिधि तक पंक्ति बनाई जाती है जो घड़ी के कांटे की तरह घूमती है। केन्द्रस्थ नर्तक अपनी ही जगह घूमता है। **लगने** नामक नृत्य में नर्तक ताल पर घुटनों को कंपित कर नाचता है। **दोंग** विवाह के अवसर का नृत्य है। **झरनी** पूर्व और उत्तर बिहार के शिया मुसलमानों का नृत्य है। इसे ताजियों के साथ मार्ग में पुरुषों द्वारा किया जाता है।

लोकनृत्यों की कोटि में उत्तर बिहार के **रामलीला नाच**, **कुंजवासी नाच**, **नारदी नाच**, **भगत नाच** और **बिदापद नाच** प्रायः धार्मिक नृत्य माने

जाते हैं। **झिझिया, जट-जटनी और श्याम-चकेवा** स्त्रियों के परंपरागत नृत्य हैं। स्त्री-पुरुष **सतारी** नृत्य में मिल-जुलकर नाचते हैं।

विविध जातियों के अपने-अपने नाच हैं। स्वर्गीय भिखारी ठाकुर ने अपनी प्रतिभा से **विदेसिया** नामक नृत्य को प्रचलित किया जो अब सम्पूर्ण बिहार में विशिष्ट लोकनृत्य का स्थान ग्रहण कर चुका है। **परवरिया** नामक नृत्य भी बाद में प्रचार में आया।

बिहार के आदिवासी नृत्य बहुत रंगीन और निखालस हैं। इनपर बाहरी प्रभाव अभी नहीं पड़ा। ग्राम, जो शहर और जंगल को जोड़ते हैं, अवश्य नए स्पर्श से चंचल हुए हैं। इसलिए ग्रामीण नृत्यों पर कुछ असर बाहर का ज़रूर नज़र आता है। फिर भी लोक-नृत्यों में मध्यकालीन प्रवृत्तियों और गीतों में पुरानापन अभी शेष है।

पश्चिम बंगाल

स्वर्गीय रवीन्द्रनाथ ठाकुर के ध्यान में जब यह बात आई कि ग्रामीण और लोकपरक नृत्य-शैलियों का परिष्कार किया जाए, तभी से बंगाल में लोक-कलाओं की ओर विशेष ध्यान दिया जाने लगा। स्वयं रवि बाबू ने अनेक लोक-धुनों के आधार पर गीतों की रचना की।

गंभीरा बंगाल का एक विचित्र लोक-नृत्य है। इसमें शिव की लीलाओं का अभिनय करने के लिए नर्तक मुंह पर मुखौटा बांधता है। शिवरूप नर्तक ढाक की आवाज़ पर नृत्य आरम्भ करता है और गायकों का एक दल उसके साथ ही गीत उठाता है। आरम्भ में नृत्य मंद चलता है और समाप्ति के पूर्व द्रुतगति में आता है।

बंगाल में श्री जी० एस० दत्त ने जिन दिनों व्रतचारी आन्दोलन का सूत्रपात किया, उन्हीं दिनों गंभीरा जैसे लोकनृत्यों से प्रभावित होकर कतिपय प्राचीन नृत्यों के उद्धार का प्रयत्न शिक्षितों द्वारा किया गया। चैत्र संक्रान्ति के अवसर पर मैमनसिंह ज़िले में गंभीरा की तरह ही और भी अन्य मुखौटा नृत्य होते थे। नकाब नृत्य का एक अन्य रूप **बूढ़ा-बूढ़ी खेल** में मिलता है। यह एक तरह से हास्यप्रधान नृत्य है। फरीदपुर के **अवतार** नृत्य चरक-गंभीरा उत्सव के अंग हैं, जो बंगला वर्ष के अंत में

किए जाते हैं। इसमें गीत नहीं गाए जाते, मगर प्रमुख नर्तक मन्त्रों का पाठ करता है।

रायबेंश और **ढाली** में पुरातन युद्ध-नृत्यों का रूप नज़र आता है। रायवेंश पुरुषों का नृत्य है जो वीरभूम, वर्द्धवान और मुर्शिदावाद में अधिक प्रचलित है। इसे वावरी और डोम जाति के मर्द नाचते हैं। ढोल और कांसी की ताल पर घुंघरू पहने हुए पुरुषों के पैर जिस गति से घूमते हैं, उसे देखकर रायवेंश में युद्धोन्माद की कल्पना की जा सकती है। नृत्य में शक्ति और पुरुषों की अभिव्यंजना होती है। यह वृत्ताकार नृत्य है जो कभी-कभी जोड़े में भी किया जाता है। नृत्य के दौरान कभी-कभी नर्तक के कन्धे पर दूसरा नर्तक खड़ा हो जाता है और उन्हीं आंगिक चेष्टाओं को प्रकट करता है जिन्हें नीचे वाला नर्तक करता है। इस नृत्य में नट-जैसी फुर्ती, चातुर्य और शौर्य की चमत्कारिक अभिव्यक्ति होती है।

ढाली पूर्व बंगाल के जसोर और खुलना का नृत्य है और एक प्रकार से सैनिक नृत्य है। मगर इसका एक रूप पश्चिम बंगाल में भी मिलता है। ढोल और कांसी के साथ इसे हाथ में तलवार और बेंत की ढाल लेकर किया जाता है। यह रायवेंश के समान ही नाचा जाता है।

शीतला माता की पूजा के निमित्त बंगाल में कई लोकाचार किए जाते हैं। स्त्रियां ढाक की ताल पर नाचते हुए जुलूस बनाकर निकलती हैं। बाकुरा के संताल आदिवासियों में बहुतेरे जादू-टोने और लोकाचार पाए जाते हैं। उनके साथ अनेक प्रकार के लोकनृत्य जुड़े हैं।

काठी (लाठी) नृत्य बंगाल के युवाओं का गुजरात के डांडिया रास शैली जैसा नृत्य है। यह ज़्यादातर वावरी जाति के लोगों और ग्रामीणों द्वारा किया जाता है। युवक हाथ में दो छोटी लाठियां लेकर गोलाकार खड़े हो जाते हैं। और सहगान के साथ बहुत-से जोड़ों में विभक्त होकर वृत्त में नाचते हैं। इसके पदक्षेप में बहुत गति और आंगिक चेष्टाओं में जीवन्तता होती है। युवाओं पर ब्रतचारी आन्दोलन द्वारा प्रचलित कुछ नृत्यों का धीरे-धीरे बहुत असर पड़ा। इस आन्दोलन-सम्बन्धी गति-विधियों में सामूहिक नृत्य मुख्य स्थान रखते हैं। इन नृत्यों के पीछे शरीर गठन और अनुशासन की भावना ही रही है। कुंआरी लड़कियों ने भी कुछ

इसी भावना से व्रतचारी नृत्यों को अपनाया है। यह उल्लेखनीय है कि सामूहिक कल्याण की प्रबल कामना ऐसे कार्यों में व्यंजित होती रही है। पश्चिम बंगाल के गांवों में इन्द्रपूजा के खयाल से कुंआरी लड़कियां **भाजो** नामक नृत्य करती हैं।

किसी समय बंगाल में **खेमटा** नामक नृत्य लड़कियों में बहुत चलता था। कहते हैं, खेमटा उत्तर प्रदेश की ओर से बंगाल में आया। कुछ वर्ष पूर्व तक यह नृत्य शादी-विवाह के अवसरों पर या दुर्गापूजा अथवा जात्रा के समय देखने को मिल जाता था।

राधा-कृष्ण-सम्बन्धी नृत्य बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। चैतन्य महाप्रभु के प्रभाव से बंगाल की धरती पर इन लीलाओं का प्रचार हुआ। **कृष्ण जात्रा, चण्डी जात्रा, चैतन्य जात्रा** जैसे नृत्य-रूप धीरे-धीरे विकसित हुए। इससे ब्रज की वैष्णव-भावना बंगाल में घुल-मिल गई। **जात्रा** के प्रचार का श्रेय भी चैतन्य देव को जाता है। उन्होंने **पालागान** शैली के नृत्यगान प्रसंगों को जात्रा का रूप दिया। **कीर्तन** नृत्य में बंगाल की निजी विशेषता लक्षित होती है। ढोल और करताल के साथ यह नृत्य चलता है और नर्तक दोनों हाथों को ऊपर उठाकर आध्यात्मिक उत्साह के साथ वृत्ताकार नाचता है। उस समय उसका रूप **बाउल** नृत्य से मिलता-जुलता नज़र आता है।

फरीदपुर के **धूप** नृत्य का सम्बन्ध जादू-टोनों से बताया जाता है। नर्तक बायें हाथ में धूपदानी लेकर वृत्ताकार नृत्य करते हैं। वृत्त के बाहर एक व्यक्ति धूप लेकर खड़ा होता है, जो सामने आते हुए नर्तक की धूप-दानी में धूप डालता जाता है। धूप के पड़ते ही आग भभकती है। अंधेरी रात में यह नृत्य बहुत खिलता है।

मुहर्रम के अवसर पर बंगाल के ग्रामीण मुसलमान **जारी** और **मर-सिया** नाचते हैं। जारी का अर्थ है मातम। नृत्य के साथ जो गीत गाए जाते हैं, उनमें इमाम हुसैन के जीवन-सम्बन्धी घटनाओं का वर्णन होता है।

व्रत नृत्य बंगाल का एक पारिवारिक नृत्य है। इसे **घटओलानो** या **घट-स्थापन** नृत्य भी कहा जाता है। विशेष रूप से यह स्त्रियों का नृत्य

है और ढाक पर नाचा जाता है।

बंगाल का एक और उल्लेखनीय नृत्य **मादल पूजा** है। ढाक, ढोल, मादल जैसे चर्मवाद्यों की पूजा करना नर्तकों के लिए आवश्यक है। युवा-वर्ग इन वाद्यों की पूजा करते समय जिस नृत्य को प्रस्तुत करते हैं उसी ताल में शारीरिक मुद्राओं को भी प्रकट करते हैं।

असम

उत्तर में शंकोश नदी और पश्चिम में ब्रह्मपुत्र के जीवन्त प्रभाव से समृद्ध तथा तेरहवीं शताब्दी की अहोम संस्कृति की परम्परा को नया संदर्भ देने वाला असम प्रदेश अपने **बीहू** नृत्य के लिए प्रसिद्ध है।

वीहू प्राचीन आरण्यक नृत्यों में से एक है। यों भी कहा जा सकता है कि यह मीरी और कचारी जाति का नृत्य है। **बोहाग बीहू** वर्ष के स्वागत में तथा धान पक जाने पर **माघ बीहू** का आयोजन किया जाता है। वैशाख में **वैशाख बीहू** वसन्तोत्सव का रूप ग्रहण करता है।

वैशाख वीहू में गाय-बैलों को जलाशयों में ले जाकर नहलाने की परम्परा है। इस अवसर पर गाय-बैलों के अंगों की पुष्टि तथा वंश-वृद्धि के उद्देश्य से बैंगन, लौकी, ठेकेरा फल आदि अर्पित करते हुए गाते हैं—

'लाउ खा, वेङ्‌ना खा, दिने-दिने वाढ़ि जा'।

वीहू शस्य-वृद्धि का उत्सव है। गांव के युवक-बच्चे-वृद्ध मिलकर हंस-मुर्गी के अंडे लड़ाते हैं। जिसका अंडा विक्षत होता है उसे असफल समझा जाता है और जीतनेवाला उस विक्षत अण्डे को प्राप्त करता है। बड़े-बडे भैंसे लड़ाए जाते हैं। इसे 'मटा-महर-युज' कहते हैं और इसे देखने के लिए हर कोई उत्सुक रहता है। 'मा-इ-ल-र' की ध्वनि से शोरगुल मचाते हैं। भैंसों की लड़ाई देखने के लिए ही तो अहोम राजाओं ने शिवसागर में 'रंघर' (उत्सव-गृह) का निर्माण किया था।

बीहू से सम्बन्धित कुछ आचार-विचार आज भी निभाए जाते हैं। वैशाख बीहू में विदा देने का नियम भी एक विशेष स्थान रखता है। गांव के आसपास किसी सेमर वृक्ष को केन्द्र मानकर युवक-युवतियां घूम-घूम-कर नाचते-गाते हैं। इस अवसर पर असमिया-मिश्रित भाषा में यह विदाई-

गीत गाया जाता है—

गछर तले ऐ मदार तले ऐ,
आमार बिहु बतियाई याय।
केरेला ऐ वेङ्ना ऐ,
आमार बिहु बतियाई याय।

उत्सव-स्थल में लाए गए वाद्य-यंत्र भी सेमर वृक्ष के नीचे छोड़ देते हैं। आसपास पैसे, कपास, सूत, फूल आदि छोड़ जाते हैं। इन्हें कोई नहीं लेता। जब नृत्य-मण्डली अपना कार्य समाप्त कर घर लौटती है, तब किसी को भी पीछे मुड़कर देखना नहीं होता। ऐसा माना जाता है कि अगर किसी ने मुड़कर देखा तो वहां छोड़े हुए अमंगल उनके साथ गांव आ जाएंगे, वे समाज को कष्ट पहुंचाएंगे।

चैत्र का अंतिम दिन तथा वैशाख के प्रारम्भिक छः दिन बीहू के खास दिन हैं। इन दिनों बीहू का एक दूसरा भेद **हुकारी** भी देखने में आता है। हुकारी नर्तक चैत्र संक्रान्ति के दिन घर-घर जाकर आशीर्वचन गाते हैं।

बीहू संभवतः शुरू में आनुष्ठानिक नृत्य रहा होगा। उपजवृद्धि अथवा यौनसुख के सन्दर्भ में यह नाचा जाता है। नर्तक पहले अपने दोनों हाथ पुट्ठे पर रखते हैं। फिर शरीर कंपाकर धीरे-धीरे अपनी भुजाएं खोलते हैं। साथ ही कमर का निचला अंग हिलाकर झटके के साथ छाती को उत्कोच देते हैं। पुरुषों का बीहू रूसी नृत्य योत्का की तरह उल्लास-प्रधान एवं फ्रांस के तूवादू की भांति प्रकृति के निकट है। असम के इस बीहू में पेपा नामक भैंस के सींग का बनाया हुआ वाद्य तथा बांस को चीरकर ताल देने के लिए तैयार किया गया 'टोका' नामक वाद्य, दोनों ही महत्त्वपूर्ण हैं। 'गगन' नामक मोरचंग के समान वाद्य भी इसमें प्रयुक्त होता है।

हुकारी वृत्त में नाचा जाता है। इसका पूर्वांश कीर्तन-प्रधान होता है और उत्तरांश बनगीतों से उठाव पर आता है। **ढुलिया** और **भंवरिया** नृत्य असम के क्रीड़ा-प्रधान नृत्य हैं। बड़े ढोल और झांझ का शोर इनमें युयुत्सा का संचार करते हैं, मगर नर्तक मौज में आकर उछल-कूद भी इस स्वच्छन्दता से करते हैं कि नृत्यों का रूप बिखरता नहीं।

दक्षिण भारत की देवदासी-प्रथा की तरह देवता को समर्पित लड़कियां **देवधानी या देवधा** नाचती हैं। इन लड़कियों के अधिकांश नृत्य सर्पों की देवी मनसा की पूजा से संबद्ध हैं। नृत्यभूमि में कभी-कभी नर्तकी कपोत को मारकर उसका ताज़ा रक्त पीती है और फिर अपने बाल छितराकर वृत्त में अथवा अंग्रेज़ी के आठ अंक के आकार में नृत्य करती है। इस स्थिति में देवधानी नृत्य विशिष्ट रहस्यपूर्ण हो उठता है। देवधानी नृत्य ओजापाली नृत्य का आनुषंगिक नृत्य है। वैसे इस नृत्य के कई भेद हैं। नर्तकी घुटने को स्पर्श करती हुई रंगीन मेखला वक्ष पर बांधे रहती है। ओझा सिर पर लम्बी पगड़ी बांधता है, हाथ में चूड़ी और कानों में कुंडल धारण करता है **भवानी** नृत्य करते समय कभी-कभी देवधानी के शरीर में देवी का प्रवेश हो जाता है। नाचते-नाचते वह ज़मीन पर गिर पड़ती है। उस समय अर्द्धमूर्छा में लोग उससे भविष्यवाणी कहने का आग्रह करते हैं और तरह-तरह के प्रश्नों का जवाब चाहते हैं।

असम के वैष्णवों का **भाओना** नृत्य धार्मिक है। इसकी प्रकृति नाट्य-प्रधान है। इसे **श्रंकिया नाट** भी कहते हैं। इसमें दर्शकों के मनोरंजनार्थ **बिहुआ** अथवा **नतुआ** जैसे परिहास-नृत्यों को भी सहज भाव से सम्मिलित कर दिया जाता है।

ढुलिया ढोलों पर नाचा जाने वाला नृत्य है। इसमें नर्तक मुखा (मुखाटा) पहनता है।

खुलीमा अनेक मृदंगों को एकसाथ बजाते हुए नाचा जाता है।

असम के पश्चिमी भाग में अलग तरह के लोकनृत्य मिलते हैं। **झूमर** उनमें से एक है। कुछ नृत्य ऐसे हैं जिनमें स्त्रियां धनुष लेकर नाचती हैं। कुछ में सूप को हाथ में उठाकर नाचा जाता है। दक्षिणी भाग में, जहां बंगला का प्रभुत्व है, नई दुलहिन के स्वागत में **बऊ नाच** किया जाता है। असम के कचारी लोग रास की शैली में कुछ नृत्य करते हैं। यहां के मुसलमान **ओजा पाली** नाचते हैं। अश्व-युद्ध की अनुरूपता कचारी जाति के **गाराई-दबराई-नाई** में देखी जा सकती है, **सान-गालाधी-बनाई** नामक नृत्य में सीमावर्ती झड़प, **खाईजामा-फनाई** में तलवार से पेड़ गिराने का भाव और **सकराउ-ली** में स्त्रियों की तलवार लेकर वृत्त में नाचने की मुद्रा

मिलती है।

अन्य लोकनृत्यों में बोडो-कचारियों के **बगुरुम्बा** और **माई-गाई-नाई** बहुत प्रसिद्ध हैं। बगुरुम्बा बोडो युवतियों का नृत्य है। यह अपनी स्वच्छन्द मुद्राओं और मुक्त भाव के लिए लोकप्रिय है। **माई-गाई-नाई** चावल के रोपे लगाने की मुद्राओं को व्यक्त करता है।

अरुणाचल प्रदेश

अरुणाचल प्रदेश (नेफा) की आवार युवतियों के एक लोकगीत का आशय है: "आज रात गांव के सभी युवक सौर युवतियां मेहमानों के सामने नाचेंगे, गाएंगे। ओ मेरी सहेलियो, तुम मुझे अपने साथ नाचने के लिए क्यों नहीं बुलातीं ?"

नाच के लिए, इस तरह का आग्रह इस प्रदेश के निवासियों का स्वाभाविक गुणधर्म है।

अरुणाचल प्रदेश, ऊंचे पहाड़ों का प्रदेश है। सिआंग नदी जो आगे चलकर असम के मैदानों में डांग और लोहित के मिलने से ब्रह्मपुत्र हो जाती है, इसे पूर्वी और पश्चिमी भागों में बांटती है। पहाड़ी सौन्दर्य से पूर्ण यह प्रदेश मोङ्पा, आदि, डफला, आपातानी, तागिन, खम्वती, सिंगपो, नोक्टे, वांचो इत्यादि आदिवासियों की संस्कृतियों का क्षेत्र है। मगर इन सब जातियों में आवार या आदि बहुत आकर्षक हैं। इसका निवास हिमालय-तराई के पूर्वी भाग में अधिक है जिसे सियाङ् कहते हैं। पश्चिमी और पूर्वी सियाङ् में इसकी अन्य उपजातियां बसी हैं। आदियों में पुराने गीतों को गाने वाला व्यक्ति 'मीरी' कहलाता है। नृत्य का संचालन भी मीरी का काम है। वह अपने रोज़मर्रा के वस्त्रों के ऊपर लाल रंग का 'गाले' पहनता है। घुंघरुओं की दो लड़ें उसके गले में पड़ी होती हैं। नाचते समय उसके हाथ में 'योक्सा' नामक चौड़े फाल वाली तलवार होती है। योक्सा वाद्य का काम भी देती है, क्योंकि उसमें छोटे-छोटे छल्ले होते हैं जिनसे ध्वनि पैदा की जाती है। मीरी योक्सा नचाता है और गीत की पंक्तियां उठाता है।

अरुणाचल के आदिवासियों में लड़कियां वृत्त में नाचती हैं। कंधे पर हाथ रखकर और मुक्त बांहों से भी उन्हें नाचने की रव्त है।

युवकों के नृत्यों में युद्धोन्मत्त उभार होता है। सन् 61 में आदि युवकों की एक टोली ने राजधानी में युद्ध-नृत्य दिखाया था। युद्ध-नृत्य में देवता की पूजा की जाती है। बाद में शत्रुओं पर आक्रमण की मुद्राएं और समापन विजयी योद्धाओं की खुशी में होता है।

इनके गीतों में, खासकर मोसुप लड़कों के गीतों में 'मिथन' (इस इलाके का भैंसे की शक्ल का एक पालतू जानवर) की उत्पत्ति, पुराणगाथा 'आवाङ्' और 'सोलुङ्' तथा 'एतर' नामक उत्सवों का वर्णन होता है। सोलुङ् के समय युवतियां धान की उत्पत्ति को लेकर कई गीत गाती हैं और नाचती हैं—

एलङ् ए एलङ् यक्क देलङ्
आवा देलगा रङ्म् यक्क देलङ्…

यह एक लम्बा गीत है। इसमें, अन्तर्भुक्त कथा का सारांश यह है: "प्राचीन काल में दोइंग और बौते ने देखा कि वे जो धान की खेती करते थे वह बर्बाद हो जाया करती थी। उन्होंने देखा कि बालों की जूं की तरह कुछ कीड़े ज़मीन के अन्दर जाने की कोशिश कर रहे थे। उन्हें पता चला कि ये कीड़े बड़ी संख्या में थे और यह दीमक थी जो धान की बर्बादी के लिए उत्तरदायी थी। मेयुमे और दूसरों ने इस विषय में बातचीत की और कीने की सहायता से एक अंडा पाया। बाद में अंडे से एक मुर्गा निकला। कीने द्वारा मुर्गे को सारी दीमक को मार डालने की आज्ञा मिली और इस तरह उन कीड़ों का नाश हुआ और धान की रक्षा हुई।"

मुर्गे की उत्पत्ति के सम्बन्ध में मोसुप युवकों द्वारा एक और गीत गाया जाता है—'मेयुम पेदङ् दपुङ् पुमु'। गीत की कथा संक्षेप में इस प्रकार है: "रुआंग की उपत्यका के निकट एक नदी के उद्गमस्थान पर पेदङ् नाने ने मिनुर नामक बच्चे को जन्म दिया। एक बार रात में मिनुर ने एक दुःस्वप्न देखा। बहुत-से गांवों का भ्रमण कर अन्त में वह उस स्थान पर पहुंचा जहां योङ्मो (लोहार) का कारखाना था। वहां उसने पेदङ् से बातचीत की। माजिङ् और सिकिङ् भी उस स्थान पर आए और दुःस्वप्न के बारे में विचार-विमर्श किया। पेदङ् नाने ने मिनुर का विश्वास न करके उसे झूठा बतलाया। इसपर मिनुर भाग खड़ा हुआ। लेकिन वह

निकट ही छिपकर पेदङ् नाने की गतिविधि का निरीक्षण करता रहा। उसने पेदङ् को अंडे की तरह की किसी चीज़ को छुपाते हुए देखा। जब पेदङ् नाने चला गया तो उसने अंडे की तरह की उन चीज़ों में से एक ले ली। वह उस चीज़ को पहचान न सका। अतः बिसि नामक एक प्रसिद्ध योङ्मो के पास गया। बिसि ने उस अंडे को पहचान लिया और बोला कि वह पेदङ् और पुम्मु से निकला था। तब मिनर ने बिसि से कहा कि चूंकि उसने उस अंडे को पहचाना है अतः वही उसका कुछ बना सकता है। बिसि ने तब उसे एक रूप देना शुरू किया। पहले उसने गर्म लोहे को ठंडे पानी में डालकर आंख बनाई। इसी तरह उसने फिर चोंच भी बनायी। तब बिसि ने सेदी के बालों की सहायता से पंख बनाए। बड़े कारीगर बिसि ने रादा पेड़ की पत्तियों की सहायता से पैर बनाए। इस प्रकार उसने एक पूर्ण विकसित मुर्गा बनाया।''

लगभग बत्तीस हज़ार वर्ग मील में फैला हुआ प्रदेश कामेङ्, लोहित, सुबनसिरी, तिरप और सियाङ् डिवीज़नों में बांटा गया है। इसके उत्तर में हिमाचल और दक्षिण में ब्रह्मपुत्र की घाटी है। तिब्बत और भूटान की सीमाओं को भी यह क्षेत्र स्पर्श करता है। इसका लगभग आधा भाग पहाड़ी है और आधा जंगलों से ढका है।

अरुणाचल में विचित्र रीति-रिवाज़ प्रचलित हैं। मोङ्पा, जोकि कामेङ् डिवीज़न में अधिक हैं, दूसरों की अपेक्षा अच्छी तरह जीना जानते हैं। इनमें लामाओं के अनेक लोकनृत्य प्रचलित हैं। इन नृत्यों में मुंह पर मुखौटे लगाए जाते हैं। कुछ वर्ष पहले राजधानी में इन मोङ्पा लामाओं ने **शेर और मोर** नृत्य प्रस्तुत किया था। इस नृत्य में शेरों का आवरण पहनकर दो युवक मैदान में आते हैं और बाद में एक व्यक्ति मोर का मुखौटा पहनकर प्रवेश करता है। यह बहुत ही अनोखा नृत्य था। मैदानों में रहने वाले लोगों के लिए इनके नृत्य हमेशा आकर्षण के विषय रहे हैं। सुबनसिरी के आपातानी और डफला भी खूब नाचते हैं। तवांग क्षेत्र की याङ्-सांग्-चू घाटी के खम्बा को आज भी अपने नृत्यों को बनाए रखने का मोह है। लोहित डिवीज़न के मिशमी, तिरप के वांचो और नोक्टे अनेक प्रकार के नाच नाचते हैं।

लोकनृत्य आदिवासियों के लिए जीवन को उल्लसित करने वाली अभिव्यक्ति रही हैं। अरुणाचल के युवा-युवतियों के नृत्यों में बहुत आकर्षण होता है। बौद्धमतावलम्वी लामाओं ने अपनी गाथाओं को नृत्य से जोड़ा है। आबार या आदि जाति के लोगों में इतिहास की सूझ है। उत्तर-पूर्व सीमांत अंचल के आदिवासियों की अपेक्षा इनमें पुरागाथाओं को नाच के साथ गाने की प्रगाढ़ परम्परा है।

मणिपुर

वर्तमान मणिपुर महाभारत काल का गन्धर्वलोक माना जाता है। किंवदंती है कि पार्वती ने एक बार महादेव से लीला करने का अनुरोध किया। लीला के लिए मणिपुर का रमणीय क्षेत्र चुना गया। वहां का सौंदर्य देखकर आमंत्रित देवता मुग्ध हो गए और उन्होंने उसी भूमि को अपना निवास बनाया। शिव ने गन्धर्व नगरी बसा दी। इससे गन्धर्वों की परम्परा चल पड़ी। उन्हीं गन्धर्वों के एक राजा की कन्या चित्रांगदा के के सौंदर्य पर अर्जुन मुग्ध हुए। इससे बभ्रुवाहन का जन्म हुआ। कहा जाता है उसी बभ्रुवाहन की संतति ने बहुत समय तक मणिपुर पर शासन किया।

मणिपुर के निवासी नृत्य-गान के प्रेमी हैं। इसलिए इस क्षेत्र की नृत्य-परम्परा में लोक-नृत्यों के साथ मंजी हुई शैली के नृत्यों का भी समावेश होता है। वैष्णव-परम्परा के नृत्यों को अक्सर मणिपुरी नृत्य की संज्ञा दी जाती है, मगर मणिपुर के मूल निवासी कभी भी अपनी इस परम्परा को मणिपुर नृत्य की संज्ञा नहीं देते।

मणिपुर से अनेक प्रकार के नृत्यों का प्रचलन है, जिनमें मोटे तौर पर **लाइ हारोबा, माइबा और माइबी, रास, संकीर्तन, चोलम्** आदि मुख्य हैं। मगर यहां के लोकनृत्य तथा परिष्कृत शास्त्रीय नृत्य के बीच भेद करना कठिन है।

उत्तर की पहाड़ियों का स्पर्श करती मणिपुर की उपत्यका अपने सौंदर्य के लिए प्रसिद्ध है। मणिपुर के निवासी कुछ तो उपत्यका में बसे हैं और कुछ पहाड़ों में। उपत्यका के लोग स्वयं को मेतिस कहते हैं। वे अपना

अतीत वैदिक काल से जोड़ते हैं।

वैष्णवों के पुराने नृत्य प्रायः आनुष्ठानिक रहे हैं। अतः उनके नाचने का दायित्व माइबा और माइबी पर होता है, जो वस्तुतः पुजारी और पुजारिनहोते हैं और श्वेत वस्त्र धारण करते हैं। वर्तुलाकार नाच में ये अत्यन्त सुघड़ता और संयम का परिचय देते हैं।

लाइ हारोबा कई दिनों तक चलने वाले उत्सव से सम्बन्धित मणिपुरी नृत्य का एक प्रमुख रूप है। वैष्णव धर्म के बाद भी लाइ हारोबा की परम्परा मणितुर में क्षीण नहीं हुई। मणिपुर-वासियों का विश्वास है कि सृष्टि के आरम्भ में **सिदबा** नामक एक गुरु हुए जो शून्य मंडल में घिरे हुए दिखाई दिए। अकस्मात् विराट शून्य में सतरंगी किरणें उदित हुईं और अन्धकार व आलोक में बंट गईं। सिदवा ने उसमें प्रवेश किया, जिसके फलस्वरूप उनके दायें कंधे से एक पुरुष और बायें से सात स्त्रियां पैदा हुईं। इसी कल्पना की स्मृति में लाइ हारोवा नृत्य किया जाता है। इसके कई प्रकार हैं।

खंबा थोइबी दूसरा परम्परागत नृत्य है। इसमें खंबा और थोइबी—शिव और पार्वती के रूप—की प्रेमकथा वर्णित है। हर युग में इस नृत्य का परिष्कार होता जाता है और इसमें नई मुद्राएं और भंगिमाएं जुड़ती जाती हैं। **फिशा जोगाई**(बुनकर-भंगिमा) नृत्य में भी यही कहानी प्रयुक्त होती है। संकीर्तन और रास सामूहिक नृत्य हैं। रास के पांच भाग होते हैं जो विभिन्न अवसरों पर किए जाते हैं। इनमें **वसन्तरास** (होली पूर्णिमा), **महारास** (कार्तिक पूर्णिमा), **नित्यरास** और **गोपरास** प्रमुख हैं। इन नृत्यों के लिए बहुत अभ्यास की ज़रूरत है। मणिपुर निवासी इनमें सम्मिलित होकर नाचने को सम्मानप्रद मानते हैं।

मरिबौक जोगोई और **खुबाकइसै** लड़कियों के नृत्य हैं। मरिबौक में केवल चार लड़कियां नृत्य करती हैं। खुबाकइसै में लड़कियों के पीछे कुछ व्यक्ति तालियां बजाते और गाते हैं। नृत्य में युवतियां फनेक पहनती हैं। फनेक मेखलाकृति रेशमी वस्त्र होता है। इसमें मोटी-मोटी रंगीन धारियां बनी होती हैं।

युवा लोगों का एक प्रसिद्ध नृत्य **सनजोइबा** है। इसमें नर्तक मयूरपुच्छ

से सजा हुआ मुकुट पहनते हैं। नाच के साथ मृदंग, झांझ और करताल बजाए जाते हैं।

संकीर्तन नृत्यों को **परेंग** और **चोलम्** नृत्य-प्रकारों में बांटा जा सकता है। चोलम् का मुख्य रूप **पुंग चोलम** (ढोल नृत्य) है। इसके अन्य रूपों में **डफचोलम् खंजरीचोलम्** इत्यादि नृत्य आते हैं। **चोलम्** एक उद्धत नृत्य है। इसमें कुछ नर्तक तलवार-भाले लेकर विशेष भंगिमाओं और गतियों में नाचते हैं, कूदते हैं। इन्हीं नृत्यों में मणिपुर के नगाओं के नृत्यों को सम्मिलित किया जा सकता है।

यहां इस क्षेत्र में बसे, काबुयी नगाओं के लोकनृत्यों की चर्चा भी की जा सकती है। **माखोम् लाम्** इनकी अपनी शैली है। कचा नगाओं के नृत्यों में **चिंगी लिम्, कथोन् लिम्, कहोत लिम्** और **करही लिम्** प्रमुख हैं। चिंगी लिम् मिथन बलि या लुपुंगी उत्सव के समय किया जाता है।

उत्तरवर्ती माओ नगाओं के कई युद्ध-नृत्य प्रचलित हैं। जिनमें **उरिडो** नाम का नृत्य हमला करते समय किया जाता है। इसमें पुरुष नर्तक तरह-तरह की आवाजें करते हैं। **कोसाऊ-कोसाऊ** इनका एक और नृत्य है। तंकुल नगाओं का उत्सव-नृत्य **लुइरू फनित** फसल पकने पर किया जाता है।

अनलों का आखेट नृत्य **लुपेश्र** मणिपुरी आदिवासी नृत्यों की श्रेणी में आता है। अकम् इनका आनुष्ठानिक नृत्य है। जका लाम् और रुङ् खाम् लाम् भी इनके प्रसिद्ध नृत्यों में हैं।

मिज़ोरम

बाईस हज़ार वर्ग किलोमीटर से तनिक कम क्षेत्र में व्याप्त मिज़ोरम उत्तर में वर्मा और दूसरी ओर बंगला देश के बीच स्थित प्रदेश है।

मिज़ो का अर्थ है 'पहाड़ों के निवासी'। इन निवासियों में कूकी-चिन कबीलों की कई जातियां सम्मिलित हैं। मगर लुशाई, लाखेर, चकमा, राल्टे और पविस इनमें मुख्य हैं। चकमा बौद्ध हैं, किन्तु मूलतः ये चित्त-गाङ पहाड़ों के वासी हैं। लगभग 95 प्रतिशत मिज़ो ईसाई हैं किन्तु इस धर्म-परिवर्तन का इनके नृत्य और संगीत पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

मिज़ो का बांस नृत्य **चेराकान** बहुत मनोरंजक और क्रीड़ा-प्रधान नृत्य है। इसमें प्राय: लड़कियां नाचती हैं। यह नृत्य मणिपुर के कुछ नगाओं में भी प्रचलित है। ज़्यादातर इस नृत्य में कुंआरे लड़के-लड़कियां ही नाचते हैं।

जब ऋतुएं बदलती हैं तो मिज़ो अपने जीवन में उत्साह और उमंग का संचार करने के लिए अनुकूल अवसरों की सृष्टि कर लेते हैं। मिज़ोरम की लुशाई युवतियां लंबे-लंबे बांसों की ताल पर नाचती हैं। कुछ युवतियां बांसों के सिरे पकड़कर आमने-सामने बैठ जाती हैं। इन बांसों की रचना + (घन) की शक्ल में की जाती है। बैठी हुई युवतियां एक निश्चित ताल में बांसों को टकराती हैं। इन्हीं बांसों की व्यवस्था में अन्य युवतियां इस ढंग से नाचती हैं कि बांसों के आपस में टकराते समय उनके पैर बांसों में नहीं फंसते। यह नृत्य कूकी जाति में भी चलता है। एक तरह से युवतियों के साथ वह युवकों का भी मनोरंजक लोक-नृत्य है।

पाखुपिला लुशाई पहाड़ियों के दक्षिण-पूर्वी भाग के लाखेर आदिवासियों का एक उल्लेखनीय नृत्य है। इसका संबंध जंगल जलाकर खेती करने से है। इसे स्त्री-पुरुष मिलकर नाचते हैं। इन्हीं लोगों में मृतक को गाड़ते समय **रखतला** नामक एक आनुष्ठानिक नाच किया जाता है, जो लुशाई लड़कियों के बांस नृत्य के समान है।

मेघालय

श्रीमती इन्दिरा गांधी के शब्दों में, "मेघालय संगीतात्मक शब्द है जो मेघों से आच्छादित उन्नत पहाड़ों के विचारों को उत्पन्न करता है।" यह आदिवासी प्रतिभा का प्रतीक है। 2 अप्रैल, 1970 को उद्‌घाटित यह पहाड़ी राज्य गारो, खासी और जैंतिया पहाड़ियों के एकीकरण से बना है। भौगोलिक दृष्टि से यह बहुत पुराना पठार है जो पश्चिम में गारो और पूर्व में मिकिर पहाड़ियों की ओर ढलवां है। संसार में सबसे अधिक वर्षा वाला चेरापूंजी स्थान इसी राज्य के मध्य में है।

अनेक जन-जातियों की बहुरंगी संस्कृतियों से मेघालय का पर्वतीय सौन्दर्य मुखर हुआ है। आचार-अनुष्ठान, विविध उत्सवों और रहन-सहन

वाले आदिवासी तौर-तरीकों में यहां के निवासियों की प्रतिभा चिह्नित होती है। नृत्य और गीत इनके सभी कार्यों से जुड़े हैं। जुलाई के महीने में जैंतिया जाति हैज़ा के कल्पित असुर को गांव से भगाने के लिए **क-बा-खलम्** नामक उत्सव मनाती है। इस उत्सव में समूची जाति नाचते-गाते एक बीमारी के दैत्य को पानी में बहाने के लिए निकल पड़ती है।

गारो, खासी और जैंतिया, जोकि मेघालय की प्रमुख जातियां हैं, मातृसत्तात्मक हैं। इसलिए नृत्य और गीत इनके रक्त में रसे-बसे हैं। खासियों में प्रचलित सभी धार्मिक त्यौहार परम्परागत नृत्यों में खिल उठते हैं। इनका सबसे अधिक प्रचलित नृत्योत्सव है **नौङ्क्रेम**। नौङ्क्रेम खाली त्यौहार पौम-काङ का प्रधान अंश है। इस जाति का मुख्य 'सिएम' अपने पुरोहितों के माध्यम से इसका अनुष्ठान करता है।

नोङ्क्रेम नृत्य, बसंत बीत जाने पर जेठ के महीने में आयोजित होता है। सिएम द्वारा उत्सव का दिन और बकरे की बलि देने का स्थान पहले ही निश्चित कर दिए जाते हैं। पूजा के दिन की सूचना बेंत का बना एक छल्ला घुमाकर विभिन्न गांवों में पहुंचाई जाती है।

पन्द्रह दिन पहले से पूजा की जगह बलूत वृक्ष के बने स्तूप के आगे बकरे बांध दिए जाते हैं। पुरोहित उस जगह प्रतिदिन शराब का छिड़काव करके तर्पण करता है। उसके बाद सिएम अपने पुरोहितों को लेकर औपचारिक रूप से उस स्थान पर जाता है जहां बलि की वेदी तैयार की गई होती है। वहां देवता को प्रसन्न करने के लिए पहले मुर्गा चढ़ाया जाता है। फिर बकरे की बलि दी जाती है। उसके बाद ही चंवर, ढाल और तलवार से सज्जित बाईस खासी युवक मैदान में नृत्य आरम्भ करते हैं। इस नृत्य के बाद वे पुरोहित के घर एकत्र होकर फिर नृत्य करते हैं। सिएम स्वयं चुने हुए नर्तकों सहित स्तूप के आंगन में नाचता है। तत्पश्चात् युवतियों और युवकों का मिला-जुला नृत्य होता है। "लड़कियां परिधि के बीच अपना लास्य नृत्य दिखलाती हैं। उनका पद-संचालन द्रुत किन्तु हल्का होता है। वे अपने पैरों को इतनी क्षिप्रगति से उठाती और रखती हैं कि सहसा देखने से इस क्रिया का अनुमान नहीं होता। दूर से देखने वालों को एक सिहरन, एक कंपन के सिवा और कुछ नज़र नहीं आता। उनके हाथ एक

समकोण बनाते हुए कमर से चिपके रहते हैं। मुद्रा शान्त किन्तु कम्पनशील होती है। अधखुली आंखें ज़मीन की ओर झुकी रहती हैं। वे नाचती क्या हैं, लगता है, हवा के हल्के झोंकों से नदी की छाती पर लहरें नाच रही हों। ऐसे अवसरों पर नर्तकियां चांदी के, कभी-कभी सोने के भी, मुकुट पहन लेती हैं और सिर के लम्बे-लम्बे बालों को पीछे की ओर बांधकर लम्बी वेणी लटका लेती हैं। उनके शरीर पर कीमती रेशमी पोशाक होती है। गले में सोने और प्रवाल (मूंगे) की मालाएं लटकती रहती हैं।... नाचने वाली अक्सर कुमारियां होती हैं।'

नर्तकियों के वृत्त के बाहर पुरुषों का दल वर्तुलाकार नाचता है। नाचते समय हवा में उनके चंवर आंखों को आकर्षित करते हैं। वे लम्बी कुदान लेते हैं, गति में गीत भी गाते जाते हैं। तंगमूरी (फूंक वाद्य), ढोल और झांझ वाद्य नृत्य के साथ बजाए जाते हैं। खासी लोग इस नृत्य को **क-शद्-कोन्थेई** कहते हैं। इसका अर्थ है प्रकृति का नृत्य।

क-शद्-मस्तिएइ पुरुषों का दूसरा प्रसिद्ध नृत्य है। इसमें नर्तकों की वेशभूषा बड़ी विचित्र होती है। उनके कपड़ों में मोर और मुर्गों के पंख गुंथे होते हैं। नृत्य के कुछ फेरे लेने के बाद दो व्यक्ति एक-दूसरे के सामने आकर बनावटी युद्ध-नृत्य करते हैं। यह क्रम भिन्न-भिन्न जोड़ियों में चलता है।

किसीकी मृत्यु होने पर भी खासी नाचते हैं। वैभव और समृद्धि के लिए तो बाज़ारों में इनके नाच आयोजित किए ही जाते हैं। **क-शद्-लीम्मोह** नृत्य में पुरुष अपने हाथों में पत्तोंवाली डालियां लेकर नाचते हैं। पुरुषों के पीछे लड़कियां नाचती हैं। सभी सजी-धजी होती हैं। वे मुक्त रूप से नाचतीं हैं – मगर शालीनता और शिष्टता को नहीं छोड़तीं। यह नृत्य बहुत ही सुन्दर होता है।

गारो **बांगला** उत्सवों के समय खूब प्रसन्न भाव से नाचते हैं। बांगला सामूहिक नृत्य है। नर्तकों की टोलियां गांव-गांव जाकर इसे नाचती हैं। कभी-कभी कई गांव आपस में मिलकर इसे उत्सव का रूप प्रदान करते हैं। बांगला नृत्य में लड़के और लड़कियां आमने-सामने पंक्तियां बनाकर नाचते हैं। इनमें लड़कों के पास बड़े-बड़े ढोल होते हैं और हर बजानेवाला

ढोल की थाप पर अपनी पसंद की लड़की की भंगिमा का अनुसरण करता है। जैंतिया आदिवासियों में भी **नोङ्क्रेम** नृत्य का प्रचार है। यह सर्प देवता की पूजा के लिए किया जानेवाला नृत्य है। इसमें पुरुष नर्तक के हाथ में याक पशु की पूंछ होती है और नृत्य-संरचना में वह नाचने वाली युवती के इर्द-गिर्द लम्बी छलांगें भरता है। **लाहो** जैंतिया युवतियों का एक सामूहिक नृत्य है।

नगालैंड

अरुणाचल की तरह नगालैंड भी पहाड़ी राज्य हैं। इसकी घाटियां गहरी और रहस्यमयी हैं। नगालैंड नगा आदिवासियों का प्रदेश है। इसमें लगभग 16 जातियां बसी हैं। इनमें सेमा, आओ, लोथा, रेंगमा, फोम, जित्यांग, कूकी आदि मुख्य हैं। यहां के 66 प्रतिशत से अधिक नगा ईसाई हैं।

नगा क्षेत्र में आवागमन के रास्ते पहाड़ों से गुज़रते हैं। सम्पूर्ण राज्य में रेल की पटरियों का कहीं नाम-निशान नहीं है। पूरा इलाका जंगलों से ढका है, इसलिए विभिन्न नगा संस्कृतियों का अलग-अलग रंग आज भी कायम है।

अधिकांश नगा लोकनृत्य जुलूस के रूप में शुरू होते हैं। नौजवान नगा पदसंचालन करते हुए परिधि बनाते हैं। फिर वे दो पंक्तियों में बंटकर परिधि में परिधि डालते हैं, याने सर्पिल गति से एक पंक्ति दूसरी में प्रवेश करती है और सफाई से बाहर आ जाती है।

कोहिमा के निकटवर्ती नगाओं का **क्रेदोहोह** नामक युद्ध-नृत्य नर्तकों की पैंतरेबाज़ी के लिए मशहूर है। इसमें एक खास चाल होती है जिसे **पिवहे** कहा जाता है।

सेमा नगाओं में कई प्रकार के नृत्य मिलते हैं। नृत्य अक्सर खुले मैदान में होते हैं। नाचने वाले दलों के हाथ में भाले और बर्छियां होना आवश्यक होता है। इनके अनेक नृत्य आग के आसपास किए जाते हैं।

सेमाओं के दो नृत्य **यचुमि** और **येत्सिमि केधिले** सर्वाधिक प्रचलित हैं। इनमें नर्तक तीव्र गति से अपने पैर पटकते हुए शरीर को उछालते हैं।

येत्शिमि के बिल में शरीर नहीं घुमाया जाता मगर वर्तुलाकार घूमते हुए नृत्य की गति अवश्य बढ़ती जाती है।

अकहजी सेमाओं का उल्लेखनीय नृत्य है। इसमें हाथी के दलदल में प्रविष्ट होने की भंगिमा दिखाई जाती है। मगर यह ध्यान देने की बात है कि अधिकतर सेमाओं ने हाथी नहीं देखा है।

सिवेमि नाचते समय सेमा हाथ नहीं पकड़ते। क्योंकि सबके हाथों में दाव नामक नगा हथियार होता है। इस नृत्य में केवल दो ही व्यक्ति गाते हैं। शेष नाचते समय दायें-बायें कूदते हैं और मुर्गी के बच्चों की-सी ध्वनि करते हैं।

सेमा युवतियां नृत्य के साथ गीत गाती हैं। ये गीत अक्सर दर्शकों की तारीफ से सम्बन्धित होते हैं।

आओ नगा उत्सवों के मौके पर **तसुङ्सङ** नामक नृत्य करते हैं। इसमें नर्तक और नर्तकियां गोला बनाकर बड़ी शान से नाचते हैं। कभी-कभी कोई युवा नगा वृत्त से बाहर निकलकर बर्छी भांजने की क्रिया दिखाता है। उसे देखकर और भी नर्तक गोले से छिटककर बर्छियां भांजते हैं।

आओ नगाओं के **अङोकत्रु** या **अङमलु** नृत्य में पानी में मछलियों के तैरने की भंगिमा व्यक्त होती है।

आओ चोंगाली शाखा के नगा **मोयायरि** नृत्य करते हैं। मोयायरि में नृत्य की गति ढोलक की थाप पर पीछे की ओर मुड़ती है।

चोंग सबसे सुन्दर नृत्य है। नगा नर्तक एक पंक्ति में खड़े हो जाते हैं। नृत्य-परिचालक के हाथ में दाव होती है। वह अपनी बायीं ओर के नर्तक का हाथ पकड़ लेता है। उसी तरह अन्य नर्तक भी करते हैं। वे आगे बढ़ते हैं और बाद में एक चक्र में परिणत हो जाते हैं। इसमें स्त्रियां अलग से नाचती हैं। उनके नृत्य को **चिताकजूरम** (चन्द्र नृत्य) कहते हैं। इस नृत्य में गति धीमी होती है। लड़कियां दो पंक्तियों में बंटी होती हैं। "प्रत्येक लड़की अपनी भुजाओं से अपने सामने की लड़की की कमर जकड़ लेती है। एक कतार दो कदम खिसकती है और आगे की ओर कूदती है, जबकि दूसरी कतार पीछे की ओर हटती है। इस नृत्य के साथ ढोल-ढाक नहीं बजाए जाते, सिर्फ मुंह की आवाज़ से ताल दी जाती है।"
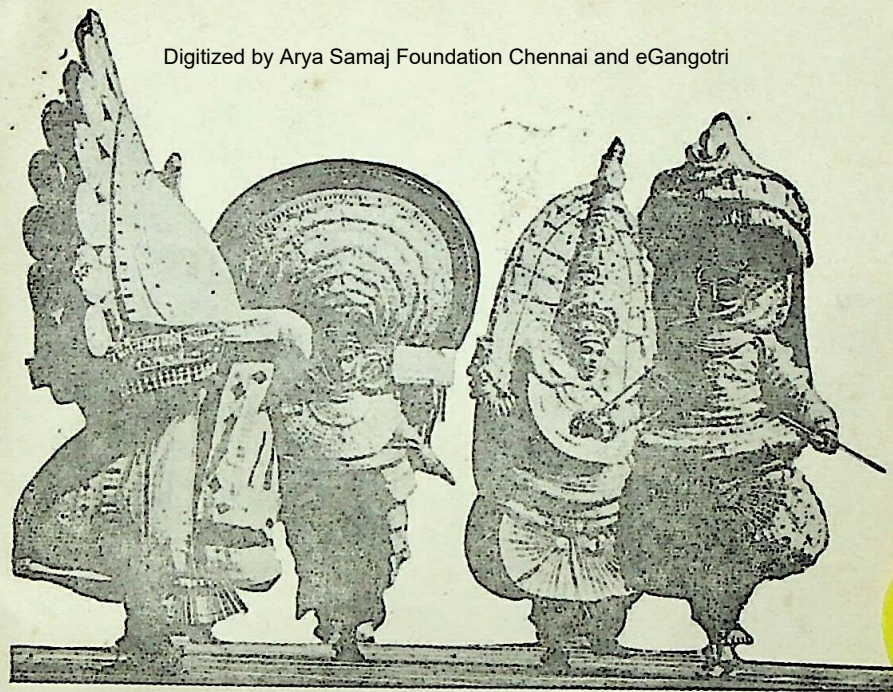
कर्नाटक का भूतकोला नृत्य

आल्हा नाचते हुए उत्तर प्रदेश के अल्हैत

आंध्र की लंबाड़ी वंजारिनों का लोक-नृत्य
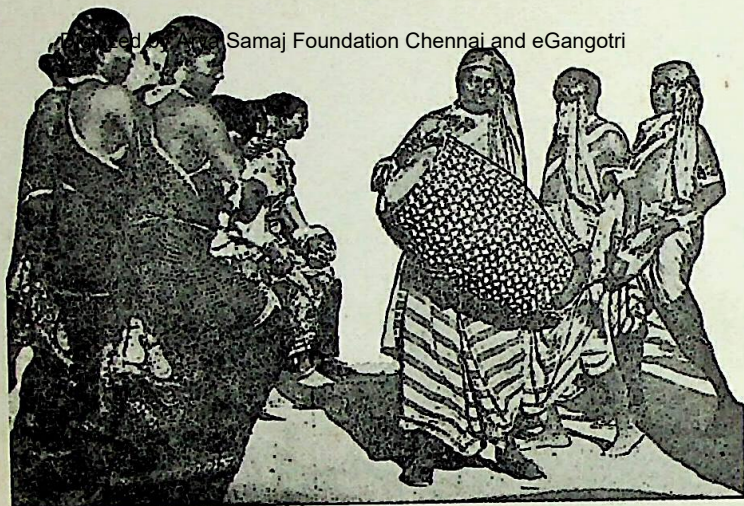
उड़ीसा के लोक-नर्तक

अरुणाचल के नगा नर्तक
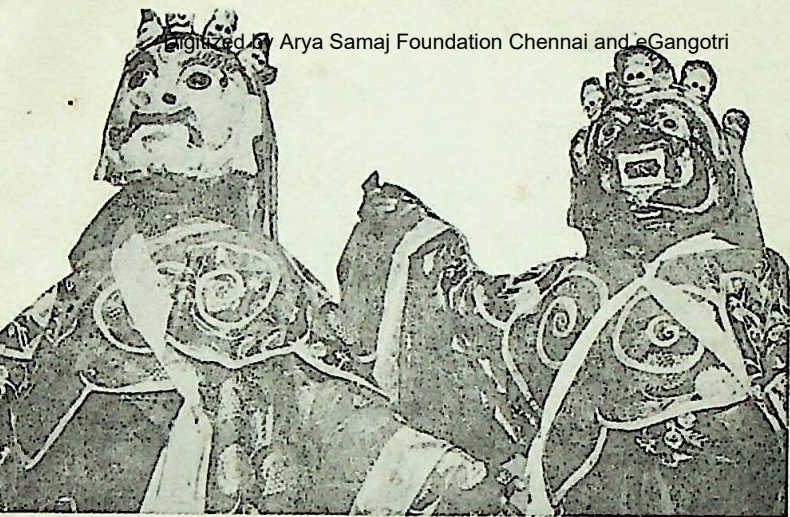
(ऊपर) लद्दाख के लामाओं का मुखौटा नृत्य (नीचे) महाराष्ट्र का झिम्मा नृत्य
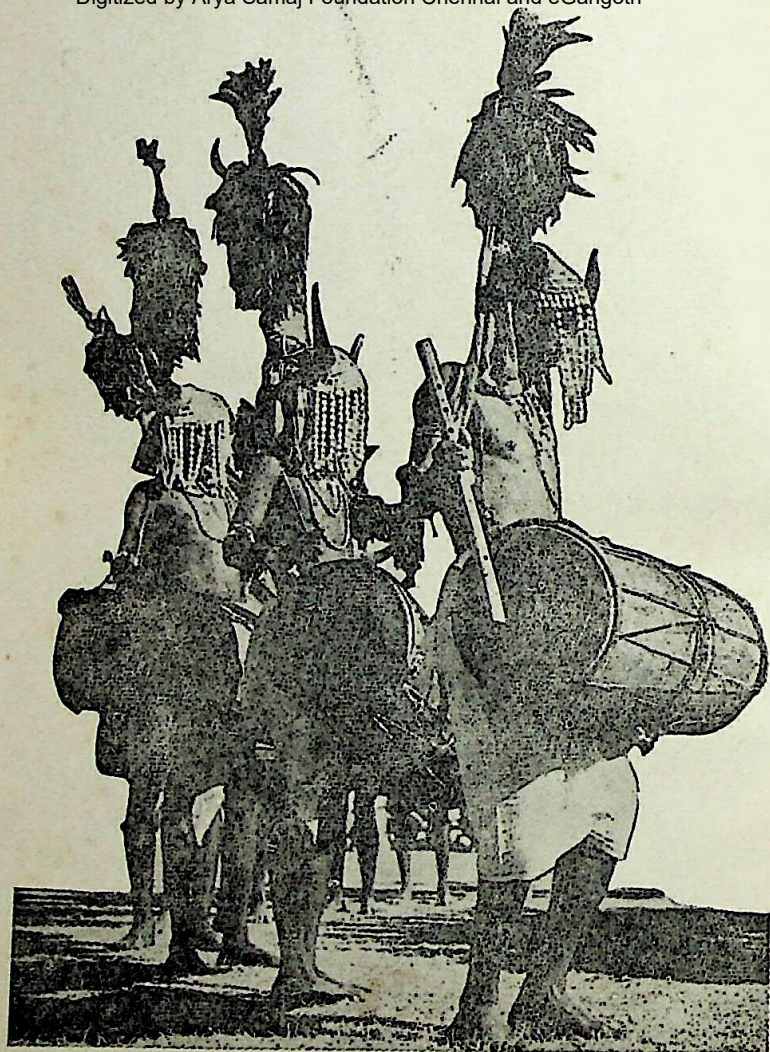
मध्य प्रदेश का सींग माड़िया नृत्य

काश्मीर का रुफ नृत्य
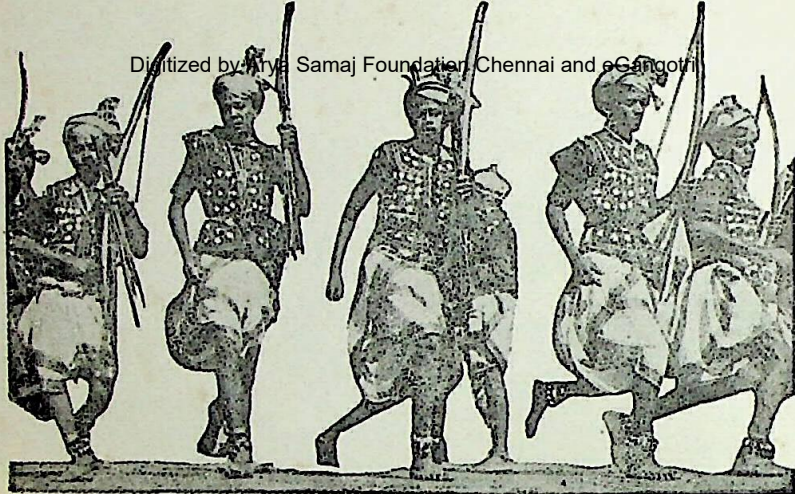
गुजरात के भील नर्तक

अंडमान निकोबार का जारवा नृत्य
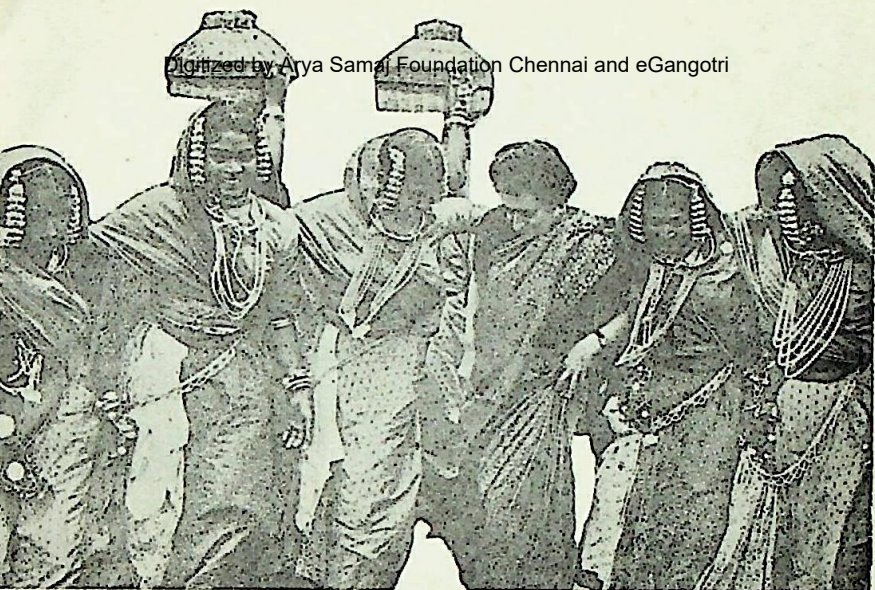
मध्य प्रदेश की भील लड़कियों का माली नृत्य

मणिपुर का पुंगचोलम नृत्य
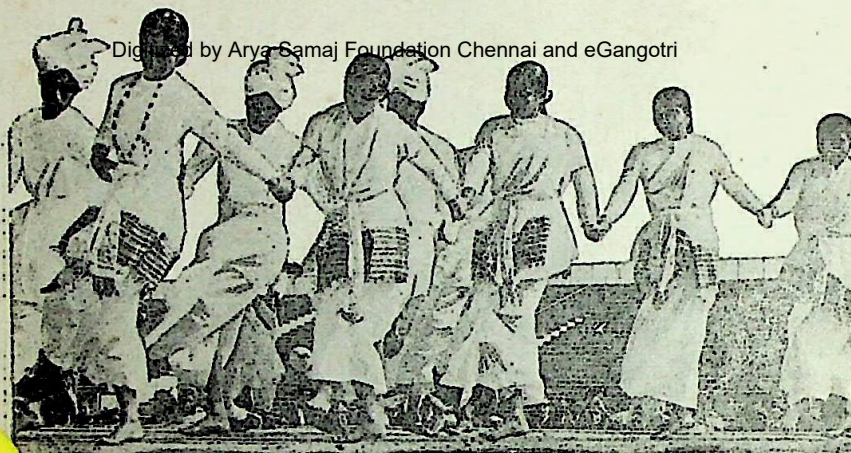
मणिपुर का देवधानी नृत्य

गुजरात का डांडिया रास

3
मध्यवर्ती क्षेत्र

मध्यप्रदेश

लोकनृत्यों की दृष्टि से मध्यप्रदेश बहुत समृद्ध है। मुख्य रूप से इस राज्य के आदिवासियों में परम्परागत नृत्यों की विविधता देखने लायक है। सबसे पहले हमारा ध्यान सींग लगाकर नाचने वाले माड़िया नर्तकों की ओर जाता है। ये **सींग-माड़िया** दक्षिणवर्ती बस्तर ज़िले के वनों में रहते हैं। नृत्य के समय माड़िया आदिवासी बड़े-बड़े ढोलों को उपयोग करते हैं, जबकि इनकी स्त्रियां गोलाई में नाचती हैं। प्रत्येक माड़िया युवती अपने हाथ में ऐसी लकड़ी लिए होती है जिसके ऊपरी सिरे पर लोहे की पत्तियों का झुमका लगा होता है। इसी लकड़ी को ज़मीन पर ठोंकते समय सिरे पर लगी लोहे की पत्तियां आपस में टकराकर ध्वनि पैदा करती हैं। यही ध्वनि ताल का काम देती है। माड़िया आदिवासियों में **गौर** नामक पुरुषों का एक देखने लायक नृत्य होता है। इसका प्रदर्शन राजधानी में कई बार हो चुका है। इसमें भैंसे के सींग बांधे नर्तक बड़े-बड़े ढोलों के साथ मैदान में मुक्त होकर नाचते हैं।

बस्तर के इलाके में आज भी घोटुल नामक प्रथा है। इसके अंतर्गत युवा लड़के और लड़कियां सामाजिक सम्बन्धों से परिचित होते हैं। घोटुल में मिल-जुलकर इन्हें जो व्यावहारिक ज्ञान मिलता है, अधिकतर उसका स्रोत नाच और गीत से ही सम्बद्ध होता है। हर रात घोटुल का आंगन युवा लड़के-लड़कियों के नृत्य-गीतों से मुखर होता है। यह वह स्थान है जहां बस्तर के आदिवासी अपने जातीय नृत्यों की समृद्ध परम्परा को बनाए रखते हुए हर आगामी पीढ़ी को उससे परिचित कराते हैं। **हुलकी** और **मांदरी** घोटुल के प्रिय नृत्य हैं।

बस्तार से लगा हुआ छत्तीसगढ़ जनपद करमा, सूआ और सैला नृत्यों के लिए प्रसिद्ध है।

पौसी पूनों का दिन छत्तीसगढ़ क्षेत्र में उत्साह और उमंगों का पर्व होता है। पौ फटते ही छोटे बालक 'छेर छेरा, कोठी के धनला हेरते हेरा' चिल्लाते हुए टोलियों में छोटी-छोटी टोकरियां लिए घर-घर फिरते नज़र आते हैं। युवतियां भी **छेर-छेरा** के लिए आने लगती हैं कि आवाज़ आती है 'कुहू'। युवकों का दल छोटे-छोटे डंडों की ताल पर खुले स्थान में **डंडा** नृत्य करने लगता है। मंडला के गोंड भी दशहरे के बाद से दीवाली तक नृत्य और उत्सव के लिए निर्धारित आंगन में इसी किस्म का एक नृत्य करते हैं। इसे छत्तीसगढ़ में **सैला** नृत्य कहा जाता है। जब युवकों का एक दल दूसरे गांव में सैला नाचने जाता है तो उसे **गिरदा** कहते हैं। पुरुषों के साथ स्त्रियां नहीं जातीं। गांव में गिरदा का स्वागत किया जाता है और मिल-जुलकर उसको सैला नाचने के बाद विदाई दी जाती है। इस प्रकार गांवों के बीच नृत्य-स्पर्धा जन्म लेती है।

सैला मंडलाकार नृत्य है। मोरपंख की कलगी, कोड़ियों के बाजूबंद और कमरपट्टे पहने युवकों के दल सैला का आरम्भ गुरु और प्रभु की वंदना से करते हैं, जो इस प्रकार होती है :

तरी नरी नाना रे तरी नरी ना मोरि नाना
परथम वन्दो गुरु आपना, फिर वन्दो भगवान

सैला दल को स्त्रियों से बढ़ावा मिलता है जो इस मौके पर **रीना** नृत्य करती हैं। सैला में डंडों की ताल पर उभरने वाले उत्साह और गति को देखते हुए लगता है कि यह वीरताप्रधान नृत्य रहा होगा। उसके ठीक विपरीत श्रृंगारप्रधान, धीमी गति से चलने वाला तथा थिरकन से भरा हुआ स्त्रियों का रीना है। सैला में **मादर** की थाप अजीब-सा समा बांधती है। **टीमकी** उसकी सहचरी है। बांसुरी के स्वर भी अपनी बात कहे बिना नहीं रहते। **ठिसकी** जो बांस की कमानी में काठ के दो चकत्ते पिरोकर बनाई जाती है, वह भी चुप नहीं रहती। डंडों की ताल और नर्तकों की गमक देखकर प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित दंडक-नृत्य, लकुटरास या डंडिया-नृत्य का स्मरण हो जाता है। राजस्थान का **डंडिया** इससे भिन्न है। यह

भीलों के गेर या मालवा के छला नामक नृत्यों से बहुत कुछ मिलता है। डंडों की ताल बनाए रखने पर पद संचालन में द्रुत गति, चापल्य और वेग की उत्पत्ति होती है। चुस्त वेशभूषा, सटा सलूखा, कसा हुआ साफा, घुटनों तक रंगीन धोती, गले में रंग-बिरंगी मालाएं और कौड़ियों के झूल से लगता है कि नर्तक अपनी सम्पूर्ण सज्जा के साथ नृत्य करना चाहता है।

दीपावली के अवसर पर छत्तीसगढ़ और माइकल पर्वतश्रेणियों में सूआ नृत्य धूमधाम से किया जाता है। इस नृत्य में कुंआरी लड़कियां धान से भरी हुई टोकरियों में लकड़ी अथवा मिट्टी के बने तोते रखती हैं। सरगुजा क्षेत्र में लाल रंग से सजे हुए एक दर्जन से अधिक 'सुग्गे' (तोते) लाल कपड़े पर धान की बालियों सहित मिट्टी के पात्र में सजाए जाते हैं। सूआ अथवा सुग्गा अथवा तोता माथे पर रखने वाली लड़की 'सुग्गी' कहलाती है। यह नृत्य स्त्रियां दो दलों में खड़ी होकर आरम्भ करती हैं। एक दल जब नाचते हुए गीत उठाता है तो दूसरा दल उसी पंक्ति को दुहराता है। नर्तक स्त्रियों का जो दल गाता है उसी ओर सुग्गी अपना मुंह रखती है। सूआ नाचने वाली स्त्रियों का दल गांव में घर-घर घूमकर अनाज और पैसा एकत्र करता है। अक्सर स्त्रियां टोली बनाकर एक-दूसरे के गांवों में जाती हैं और सांझ होने तक अपने-अपने स्थान पर लौट आती हैं। इस आवन-जावन में एक प्रकार की होड़ा-होड़ी-सी चल पड़ती है।

अन्नपूर्णा एकादशी को सूआ नृत्य में विशेष उभार आ जाता है। स्त्रियों के पद-संचालन में उत्साह और तालियों की ध्वनि में उठाव लक्षित होता है। वेंरियर एलविन का कहना है कि इस नृत्य को स्त्रियां जब नाचती हैं तो तोते की ग्रीवा की तरह अपना सिर हिलाती हैं। जब वे पैर पर घुमाव देती हैं उस समय एक टांग ऐसे उठाती हैं जैसे तोते को हम अक्सर देखते हैं। गीत की हर टेर पर तोते की तरह ध्वनि करने का प्रयत्न भी वे करती हैं।

सूआ वास्तव में युवा स्त्रियों का नृत्य है। छत्तीसगढ़ के लोकपरक संगीत की दृष्टि से सूआ एक महत्त्वपूर्ण नृत्य-गीत भी है। स्त्रियों के अनेक पर्वों से इसका सम्बन्ध जुड़ा हुआ है। सूआ गीत पारिवारिक प्रसंगों और प्रेम के विविध अनुभवों पर आधारित होते हैं। इनका रंग तोते की चोंच की

तरह लाल होता है, और तोते की बोली जैसे प्रखर होते हैं इनके बोल…

मंडला के गोंड और बैंगा आदिवासियों में **करमा** का वड़ा महत्त्व है। करमा एक उत्सव भी होता है जो नृत्यों की शृंखला में बंधा हुआ है। रायगढ़ ज़िले के उरांवों में भी करमा प्रचलित है। सिवनी और बालाघाट के जंगलों में कोर्कू और परधान जाति के आदिवासी करमा का ही एक अन्य रूप नाचते हैं। बस्तर के सीमावर्ती भाग में, जहां मध्यप्रदेश और उड़ीसा मिलते हैं, **चेतपरब** नृत्य उल्लेखनीय है।

विन्ध्य और सतपुड़ा के सघन वनों में वसे हुए इन भीलों का जीवन प्रणय और प्रतिशोध की वह बौराई नर्मदा है जो चट्टानों और पहाड़ों से तो टकराकर भी रुद्ध नहीं होती। उनकी एक प्रचलित कहावत है—'भूखला तो भूखला, सूखला खरी'—भूखे हैं तो क्या हुआ, सुखी तो हैं। शताब्दियों के दारिद्रय, अभाव, रोग और नग्नता के बावजूद भी इनमें जीने की उत्कट क्षमता है। जीवन की इस ज़िन्दगी का आभास उस समय होता है जब मौके-बे-मौके इनके पैर **भगोरिया** नाच की गति में आते हैं। मांदर की थाप, थालियों की झन्-झन्, बांसुरी की शिथिल किन्तु दिल हिला देने वाली टेर और पशुओं की-सी अनवरत ध्वनियों से इनका सम्बन्ध इतना पुरातन लगता है कि उन्हें इनके जीवन से काटकर नहीं देखा जा सकता। तनिक-सी खुशी उनके पैरों में बिजलियां भर देती है। स्त्रियां अपना गोला अलग बना लेती हैं और खुले मैदान में इनके अंग फड़क उठते हैं। तब ऐसा लगता है कि सिवा इस मनोरंजन के इन्हें दूसरा कोई काम ही नहीं है। विशेषत: भगोरिया के बाज़ार नाच और किलकारियों से भरे होते हैं। मद से छककर भील-भिलाले नाचते-गाते हैं। इस समय स्त्रियां छोटे-छोटे गीत गाती हैं। नाचते समय वे देर तक एक ही पंक्ति गाती रहती हैं। गीतों के विषय ज़्यादातर घरेलू घात-प्रतिघात, प्रेम-प्रसंग, निकट के रिश्ते की स्त्रियों के यौन-सम्बन्ध, नाक-नक्श की शोभा, शराब की धुन में बहके दूल्हे का परिहास, थानेदार, जंगली पशु-पक्षियों आदि से सम्बन्धित होते हैं। यथा:

—कलाल की लड़की ने माटी को ब्याह लिया। मेरे मन में तो ब्याहता बसी है। तुम गाओ, तुम पीओ, ओ मेरे भोले-भाले प्रियतम, नखरे न

करो, आग्रह न करवाओ।

—ओरी सहेली, वह तो मुंह छुपाने वाला जमाई है। उसने घोड़ी कलाल के हाथ बेच दी।

—जंगल में महुआ बीनते समय मुझे किसी नाग ने डस लिया। काले नाग की बड़ी-बड़ी आंखें हैं।

—ननद सुसराल चली, तो भौजाई रोने लगी। हाय, जोड़ी बिखर गई।

—मेरे घरवाले की आंखें दुखती हैं तो मुझे सेर-भर चटनी पीसने जैसे श्रम का ख्याल आता है। पर अपने प्रेमी की आंखें देखकर लगता है कि जैसे मैंने मीठा भोजन किया हो।

—नदी के पार हाट जुड़ी है। मैं हाट जा रही हूं। ओ मेरे प्रियतम, तुम पीछे-पीछे आना, मेरा भाई बड़ा क्रोधी है। उसकी नज़र बचाकर तुम मेरे लिए एक आरसी ख़रीद देना। आरसी में जब भी मैं देखूंगी, अपनी जगह मुझे तुम्हारी सूरत नज़र आएगी।

भील स्त्रियों के और भी अनेक नृत्य हैं। इनमें **जोड़ी, मोवली, नेव-ताली, पाली, दुईपाली, पचमुंड्या पाली** आदि मुख्य हैं।

राई मध्यप्रदेश के बुन्देलखण्ड का एक प्रसिद्ध नृत्य है। यह प्राय: **बेड़िनियों** द्वारा विशेष फुर्ती के साथ किया जाता है। राई अधिकतर ठंड की रातों में होली के अवसर पर या विवाह के बाद किया जाता है। लोग एक घेरा बनाकर खड़े हो जाते हैं। बीच में ग्राम्य नर्तकी **ख्याल** नामक गीत गाते हुए टिमकी या नगड़िया की ताल पर चक्राकार नाचती है। इसमें ढोलकिया नर्तकी के साथ विशेष रंगत पैदा करता है।

बुन्देलखण्ड का **बधाई** नृत्य शादी के समय मनोरंजनार्थ किया जाता है। **सैरा** इसी क्षेत्र का वर्षाकालीन नृत्य है।

मध्यप्रदेश में आदिवासियों के अतिरिक्त जो कृषि-प्रधान जातियां हैं उनके नृत्य भी हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं। इनमें मालवा का **मटकी** और **गैर**, छत्तीसगढ़ का **तपाड़ी**, बुन्देलखण्ड का **होली** और निमाड़ के बंजारों का **डांडिया** उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त निमाड़ के बंजारों का

लेहंगी और लोटा, बैंगाओं का बिमला, कोर्कू आदिवासियों का चटकोरा, गोंडों का गेंडी आदि भी द्रष्टव्य हैं।

हमारे ये लोकनृत्य सह-सम्बन्धों को बढ़ाते हैं। जों जाति जितना अधिक गाती और नाचती है उतना ही उसमें कठिनाइयों से जूझने का माद्दा होता है। इस अर्थ में आदिवासियों की नृत्यक्षमता का मुकाबला अन्य जातियां नहीं कर पाती हैं।

4
पश्चिमी क्षेत्र

राजस्थान

पराक्रम और शौर्य राजस्थानी रक्त की मूलभूत विशेषताएं हैं। प्रतिष्ठा और मर्यादा के लिए यहां का हर व्यक्ति सचेत है। यद्यपि संघर्ष से जूझना इस धरती का स्वभाव रहा है तथापि अपने निजी क्षणों में यहां का व्यक्ति अपनी सहज स्थिति में उल्लसित हुए बिना नहीं रहता। दूर-दूर तक रेगिस्तान और अनुपयोगी भूमि के फैले हुए हिस्सों ने यहां के आदमी को जितना कठोर और परिश्रमी बना दिया है, उतना ही उसे भीतर से कोमल और संवेदनशील भी बनाया है। नृत्य और संगीत इसी सन्दर्भ में राजस्थान के स्वभाव में रसे-बसे हैं।

राजस्थान के स्त्री-पुरुष कई प्रकार के परम्परात्मक नृत्य करते हैं। लोकपरक नृत्य-नाट्यों में इन नृत्यों का नितान्त अलग ही रंग यहां के क्षेत्र में मिलता है। यह रंग-शैली और अभिव्यक्ति के स्थानीय वैशिष्ट्य के अतिरिक्त बाह्य श्रृंगार और उनकी वेश-मुद्रा में भी परिलक्षित होता है।

घूमर राजस्थान का लोकप्रिय नृत्य है। दरद सभ्यता का नृत्य **फरद** ज्यों-ज्यों अपना विकास करता गया, त्यों-त्यों उसका रूप बदलता गया और अरावली की पहाड़ियों में आकर उसने, तीसरी शताब्दी में, प्रचलित **गधूरा** नृत्य में स्वयं को मिला दिया। तभी गूर्जरों की एक नई शैली गधूरा से अपना सम्पर्क कर छठी शताब्दी के आसपास घूमर के नाम से विख्यात हुई। घूमर नृत्य को सभी ने प्रोत्साहन दिया। होली के अवसर पर मनोरंजन के अतिरिक्त दुर्गापूजा और देवी की विभिन्न पूजाओं में भाव-नृत्य के रूप में भी सोलहवीं शताब्दी तक यह नृत्य अपना प्रभाव दिखाता रहा।

गारड़ी जाति के नृत्यों में उस काल के घूमर की झलक देखी जा सकती है। चालुक्यों और सुमेरियनों ने दसवीं शताब्दी में घूमर को अपनाकर नया स्पर्श दिया था। यद्यपि आज यह नृत्य केवल स्त्रियों तक ही सीमित है, पर इसका व्यापक प्रभाव राजस्थान के बाहर ताप्ती के किनारे की धरती तक पहुंचा। गुजरात भी इससे प्रभावित हुए बिना न रह सका।

घांघरा राजस्थान की स्त्रियों का खास पहनावा है। इसपर कोहिस्तान, ईरान और पामीर की तलहटी में रहनेवाली जातियों का प्रभाव पड़ा है। एक बार चारों ओर घूम जाने से घांघरा वृत्ताकार में फैलकर सिकुड़ जाता है। इसी प्रकार एक बड़े वृत्त में नर्तकियों द्वारा घूमकर घूमर नृत्य किया जाता है। लगभग आठवीं या नवीं शताब्दी में घूमर के दो रूप हो गए—**घूमर** और **गरबा**। इससे घूमर का आकर्षण और बढ़ गया। कहते हैं, मणिबाई ने प्राचीन घूमर को खोज निकाला। मारवाड़ की स्त्रियों ने कालान्तर में इसे और भी मादक बना दिया। वहां यह नृत्य नवरात्रि में और मेवाड़ में गणगौर उत्सव के समय होता है।

घूमर की एक अन्य शैली मछली नाम से विख्यात है। वस्तुत: यह अपने ढंग का नाच है। सम्भवत: गोरखनाथ और मत्स्येन्द्रनाथ की लोकपरक गाथाओं का भी इसपर प्रभाव पड़ा है। कभी-कभी गर्मी के दिनों में चांदनी रात में बंजारा युवतियां इसे नाचती हैं। राजस्थान के डूंगरपुर तथा बांसवाड़ा क्षेत्र के भीलों में इसी तरह का नृत्य प्रचलित है। इसमें स्त्रियां और पुरुष एक बड़ा वृत्त बनाकर नृत्य करते हैं। इसमें नाच की गति सरल और प्रभावशाली होती है। वाद्य के रूप में मांदल और थाली प्रयुक्त किये जाते हैं। यह नृत्य करते समय नर्तक कभी तलवार और कभी रूमाल हवा में हिलाते जाते हैं।

घूमर के ही एक भेद के रूप में **झूमर** नृत्य का उल्लेख हुआ है, मगर उसका स्वतन्त्र अस्तित्व बहुत कम नज़र आता है। यों देखा जाए तो झूमर यूची जाति के सम्पर्क से विकसित राजस्थान के गूजर और बड़गूजरों का लोकनृत्य है। इन जातियों की स्त्रियों को फलों और फूलों का बहुत शौक है। शीश पर बांधा जाने वाला 'बोर' नामक आभूषण बोर फल का ही रूप है। बताया जाता है, फूलों के गुच्छे को ये जातियां भौंरा कहती हैं।

सम्भवतः इसी शब्द से झूमरा नामक आभूषण बना। 'झूमरा ने बेंच्यां म्हारो मन ठसक्यों'—लोकगीतों की इस तरह की न जाने कितनी पंक्तियों में इस आभूषण का उल्लेख आया है। अतएव, फूलों से शृंगार कर झूम-झूम कर किया जाने वाला स्त्रियों का यह झूमर नृत्य गुर्जर और प्रतिहार संस्कृति से प्रभावित लोकनृत्य है। संभवतः पांचवीं से सातवीं शताब्दी तक झूमर अपने श्रेष्ठ रूप में रहा होगा। राजस्थान से आगे बढ़कर मालवा के कई इलाकों तक झूमर का प्रसार हुआ। उमंगों और यौन चेष्टाओं को व्यक्त करने की क्षमता वाला झूमर राजस्थान में प्रायः मेलों और उत्सवों पर किया जाता है। रामदेवजी के भोपे इसे पूजा करते समय नाचते हैं। कहते हैं, रामदेवजी की प्रथम शिष्या ने इस नृत्य को लुप्त होने से बचाया।

राजस्थान के मारवाड़ क्षेत्र में प्रचलित **डंडिया** (डिण्ड्या, डांडिया) उत्तर भारत के दण्डनृत्य के अनुरूप लोकनृत्य है। भीलवाड़ा क्षेत्र में इसे ही **गैर** नृत्य कहते हैं। डंडिया सौराष्ट्र के नृत्य से भी बहुत कुछ मिलता है। मारवाड़ में इस नृत्य के साथ मोटे-मोटे व छोटे-छोटे दंड की अपेक्षा लम्बी छड़ियों का उपयोग किया जाता है। अनेक पुरुष अच्छी वेशभूषा से सज्जित होकर इसे वृत्त में नाचते हैं। वृत्त के बीच में कुछ व्यक्ति वाद्य बजाते हैं। इस नृत्य-शैली की तुलना प्राचीन काल के दण्डरासक से की जा सकती है।

कच्छीघोड़ी राजस्थान का उल्लेखनीय लोकनृत्य है। कच्छीघोड़ी का अर्थ है कच्छ की घोड़ी, जिनका नृत्य के नाते कच्छ से कोई सम्बन्ध नहीं। पुरुष नर्तक कमर पर बांसों को किमचियों से बने ढांचे बांधकर और नकली ढाल-तलवार लेकर नाचते हैं। ये ढांचे रंग-बिरंगे कागजों से सजाए हुए होते हैं। प्रायः विवाह एवं अन्य उत्सवों में कच्छीघोड़ी नाचने वाले आमंत्रित किए जाते हैं। अक्सर बावरी जाति के लोग, जोकि कभी जरायम-पेशा रहे हैं, इसे अपना परम्परागत नाच मानते हैं। कच्छीघोड़ी नाच वस्तुतः नकली लड़ाई का दृश्य है। लड़ाई की नाटकीयता इसमें दृष्टव्य है। तंजोर के **घोड़ानाच (पोई-काल कुदिराई)** से इस नृत्य का बड़ा सामंजस्य है। उड़ीसा में भी चैत्र मास में **चैतोघोड़ानाट** उत्सव में मछुआरे बांस की

किमचियों का घोड़ा बनाकर इसी तरह का नृत्य करते हैं। कच्छीघोड़ी नृत्य विशेषकर शेखावटी की ओर नाचा जाता है। प्राचीन काल में गुप्तचरों का कार्य करने वाले अक्सर इस नृत्य के ज़रिये दुश्मन के डेरों में पहुंच जाया करते थे। आजकल यह नृत्य सिर्फ मनोरंजनार्थ व्याह-शादी के अवसर पर भी नाचा जाता है।

शेखावटी और पूर्वी राजस्थान में एक **गींदड़** नृत्य प्रचलित है। यह गैर और डंडिया से अधिक भिन्न नहीं। श्री देवीलाल सामर ने गींदड़ के सम्बन्ध में लिखा है :

"गींदड़ में परस्पर डंके भिड़ाए जाते हैं। गोल के बीच में एक मंच बनता है। इसपर एक आदमी नगाड़ा बजाता है। चार मात्रा का ठेका धीमी गति से नगाड़े पर बजता है। धीरे-धीरे उसकी गति तेज़ होती जाती है। नगाड़े की चोट के साथ-साथ डंके भिड़ाये जाते हैं और नृत्यकार घूमते हुए नृत्य करते चलते हैं। खुली हुई चांदनी रात में आनंद का समा बंध जाता है। हर मोहल्ले में प्राय: गींदड़ होता है। इसमें स्वांग भरकर लोग नाचते हैं। यह दृश्य और भी मोहक हो जाता है। गोले के स्थान में पानी छिड़क दिया जाता है ताकि धूल न उड़े। साथ में ठेके से मेल खाते लोकगीत गाए जाते हैं। ये धीमी लय के गीत बड़े चित्ताकर्षक होते हैं। प्राय: हर एक नर्तक घुंघरू बांधे रहता है। दर्शकों के लिए भी बैठने का प्रबंध रहता है। तख्ते, कुर्सी, पाटिये आदि डाल दिए जाते हैं। इसे राष्ट्रीय नृत्य भी कहा जा सकता है। यह स्वान्त:सुखाय ही किया जाता है। इस नृत्य का शिक्षात्मक और सामाजिक मूल्य बहुत बड़ा है। परस्पर सम्पर्क और प्रेम इससे बहुत बढ़ता है।"

इसी क्षेत्र में होली के अवसर पर गेर नाच होता है। गेर में केवल पुरुष भाग लेते हैं। यह उत्तेजक नृत्य है। इसमें ढोल और थालियां बजाई जाती हैं।

नेजा खेरवाड़ और डूंगरपुर के मीणाओं का एक खेलनृत्य है। "एक बड़ा खम्भ ज़मीन में रोप दिया जाता है। इस खम्भ को स्त्रियां हाथों में छोटी-छोटी छड़ियां लेकर चारों ओर से घेर लेती हैं। पुरुष, जो वहां से थोड़ी दूर पर खड़े रहते हैं, उस खम्भ पर चढ़ने का प्रयत्न करते हैं और

नारियल लेकर भागते हैं तब स्त्रियां उनको छड़ियों और कोरड़ों से पीट-कर भगाने की चेष्टा करती हैं। यह एक दिलचस्प खेल होता है। हज़ारों आदमी इसको देखने के लिए इकट्ठे होते हैं।"

मारवाड़ का एक स्वांगप्रधान खेलनृत्य और गीत है **टूटियां**। वर के बारात ले जाने के पश्चात् स्वांग रूप में जो नृत्य एवं मनोरंजन किया जाता है उसे ही ट्टियां कहते हैं। यह एक मनोरंजक खेल जैसा होता है।

वालर आवू की पहाड़ियों और सिरोही के गरासियों का स्त्री और पुरुषों का सम्मिलित नृत्य है। वालर में नर्तक अपने हाथों में तलवार या तीर-कमान रखते हैं। ढोल वजता जाता है और नाच की गति क्रमशः वढ़ती जाती है।

नृत्य-नाट्यों में राजस्थान के **तेरातालो** का उल्लेख आवश्यक है। इस नृत्य को कामड़ जाति के लोग प्रस्तुत करते हैं। कामड़ लोग छड़ी रखते हैं। राजस्थान में उसे **कामड़ी** कहते हैं। कामड़ लोग रामदेव के भक्त होते हैं। इस नृत्य का प्रमुख अंश कामड़ स्त्री के पक्ष में आता है। स्त्री अपने शरीर पर तेरह स्थानों पर मंजीरे बांधकर और हाथ में बंधे मंजीरों से उनपर सतत ताल करते हुए तेरह प्रकार के भाव दिखाती है। प्रदर्शन के समय पुरुष चौतारे पर भजन गाता है। उसकी संगत एक और पुरुष करता है, जो मंजीरे की स्थायी ताल कायम रखता है।

गुजरात

मनुष्य मात्र के लिए करुणा की आवश्यकता पर बल देने वाली पंक्ति, 'वैष्णव जन तो तेणे कहिए जे पीर पराई जाणे रे' से कौन परिचित नहीं ! भक्त कवि नरसिंह मेहता का यह पद गांधीजी का सर्वाधिक प्रिय गीत रहा है। यह गीत ही क्यों, अब तो केवल 'गांधी' शब्द ही गुजरात से जोड़ने के लिए पर्याप्त है।

देश के पश्चिमवर्ती क्षेत्र में दूर तक फैले हुए इस राज्य के पास लग-भग एक हज़ार मील लम्बी समुद्री पट्टी है। इस कारण यहां के अधिकांश लोग समुद्र से संवंध रखने वाले उद्योगों में लगे हुए हैं। सांस्कृतिक दृष्टि

से गुजरात की बड़ी आबादी कृषि-सभ्यता के संस्कारों से प्रभावित है। इसलिए गुजरात के लोक-जीवन में वे सभी बातें मिल जाती हैं जो खेतिहर सभ्यता में होती हैं, अर्थात् उत्सवप्रियता, परम्पराओं को सहेजने की निष्ठा, आनुष्ठानिक कार्यों में रुचि तथा मान्यताओं और विश्वासों को निभाने के लिए सामूहिक आस्था। स्पष्ट है, लोक-जीवन में इन बातों की कल्पना उसके लोक-नृत्यों और गीतों के बिना नहीं की जा सकती।

गुजरात के लोक-नृत्यों की चर्चा आते ही सबसे पहले **गरबा** नृत्य की ओर हमारा ध्यान जाता है। गरबा सौराष्ट्र और गुजरात के क्षत्रपों की देन हैं। स्त्रियों द्वारा वृत्ताकार नाचा जाने वाला यह नृत्य नवरात्रि में सर्वाधिक उपयुक्त लगता है। इन दिनों पुरुषों की टोलियां भी गरबा नाचती है। धार्मिक भावों वाले, ऐतिहासिक एवं लौकिक कथायुक्त पुरुषों के गरबे कालान्तर में **रासड़े** कहलाये जाने लगे। मगर अब गरबा स्त्रियों के विशिष्ट नृत्य के रूप में ही मान्य है। हाथों की परस्पर तालियों पर गरबा की रमक संवरती है। यह नृत्य अम्बा माता (दुर्गा) की आराधना में किया जाता है। मिट्टी का एक घट, जिसमें एक दीपक रखा होता है, गरबा का प्रतीक समझा जाता है। घट में कई छेद कर दिए जाते हैं ताकि जलते हुए दीपक का प्रकाश रात्रि में छिटककर बाहर आता रहे। इसी पात्र के आसपास गोलाई में स्त्रियां स्वयं अपने माथे पर दीपधारी मृतिका-पात्र रखकर नाचती हैं। गरबा समृद्धि और अच्छी फसल के लिए किया जाता है।

स्त्रियों के गरबा की भांति पुरुषों का एक नृत्य है—**गरबी**। गरबी में गति का महत्त्व अधिक है। उल्लेखनीय बात यह है कि इसमें घट का उपयोग नहीं होता। जैसे गरबा की एक किस्म **होच** नामक ताल में नीची जाती है उसी प्रकार गरबी की एक किस्म **हमची** ताल पर आधारित है।

गरबा नृत्य की एक विशेषता यह भी है कि वह केवल ग्रामीण महिलाओं तक ही सीमित नहीं, शहरों में भी सभी वर्गों की स्त्रियां नवरात्रि में इसे उत्साहपूर्वक नाचती हैं। इन दिनों प्रायः हर मौहल्ले में गरबा नृत्य होता है, यहां तक कि गुजरात के बाहर बसे हुए गुजरात और सौराष्ट्र के निवासी एकत्र होकर गरबा आयोजित करना नहीं भूलते। मालवा

और निमाड़ की नर्मदा उपत्यका में इन क्षेत्रों से आए जन-समुदायों में आज भी इन नृत्यों के प्रति मोह वना हुआ है।

गरबा नृत्य के साथ गेय गरवा पद कालान्तर में विविध विषयों से समृद्ध होते गए। नर्मदा-दलपत के समय प्रकृति-सौन्दर्य, प्रेम, रसोल्लास-विषयक रचनाओं का वाहुल्य था।

गरवा और रास के लिए उपयुक्त पंक्तियां सर्वप्रथम नरसिंह मेहता की रचनाओं में मिलीं :

नागर नंदजीना लाल
रास रमतां मारी नथनी खोवावी

मीरा के कुछ पद भी इनके उपयुक्त सिद्ध हुए। किन्तु गरबा रचनाओं को काव्य-वोझिलता से वास्तविक मुक्ति दयाराम ने दी। दयाराम के हाथों रास, गरवी, गरवा आदि रचनाएं नये सौन्दर्य से अभिरंजित होकर लोक-जीवन में प्रचलित हुईं। इस सन्दर्भ में वल्लभ की देन भी वड़ी महत्त्वपूर्ण है। नवरात्रि महोत्सव के योग्य कई गरवियां जूनागढ़ के रण-छोड़जी ने भी रचीं। मगर सहज ही स्त्रियों के कंठ पर सजने योग्य गरवियों की रचना का श्रेय दलपत को ही प्राप्त है।

परम्परागत ऐतिहासिक गरवों का अपना विशिष्ट सौन्दर्य है। सिद्ध-राज जयसिंह का गरवा विशेष रूप से समूचे कठियावाड़ और सौराष्ट्र में प्रचलित है।

सिद्धराज जयसिंह सोलंकी वंश का राजा था। गुजरात में पाटण उसकी राजधानी थी। उसने हरेक प्रकार से प्रजा को सुखी रखा। उसके लिए बाग, कुएं, तालाव, सरोवर, औषधालय, विद्यालय तथा धर्मशालाएं वनवाईं। यही सिद्धराज तालाव खुदवा रहा है। जसमा नामक ओडण ने उसे मोह से वांध दिया है और वह उससे प्रेम की भिक्षा मांग रहा है। जसमा मिट्टी की टोकरी भर-भरकर डालने जाती है। उसका वच्चा पेड़ पर वंधे झूले में झूल रहा है। राजा उससे कहता है, "हे सुन्दरी, सुन! तू इस सुन्दर काया को लेकर मेरे महल में निवास कर, अन्य ओडणों को यहां काम करने दे।" जसमा उत्तर में कहती है—"विना परिश्रम उसे खाना अच्छा ही नहीं लगता।" सिद्धराज उससे और भी अनुरोधपूर्वक

कहता है कि पाटण चलकर वह नगर, बाग, बगीचे की शोभा देखे। जसमा कहती है कि वनों की प्राकृतिक शोभा नगरों के बगीचों में कहां है ! फिर राजा उसे सोने, चांदी, हीरे, मोती, नीलम, पन्नों का प्रलोभन देता है। जसमा कहती है कि उसे तो सागर के तीर के शंख, सीपी और फूलों की मालाएं अच्छी लगती हैं।...राजा जब उसके पति के विषय में कुछ कहता है तो वह सुनती ही नहीं। जसमा की दृढ़ता देखकर उसे विस्मय होता है। अंत में जसमा यह कहती हुई चली जाती है—जो मेरे पति का शत्रु है उसका मुंह भी मैं नहीं देखती।

राजा लोके परलोके मारो ए पती रे
प्रीते परण्या माटे आपूं माराप्राण
एना शत्रु नुं मुख हूं जोती नथी कदी रे।

शान्ता गांधी संरचित तथा राष्ट्रीय नाट्य संस्थान द्वारा सैकड़ों बार प्रदर्शित गुजरात की भवाई शैली का लोक-नाट्य **जसमा ओडन** इसी कथा-वृत्त पर आधारित है।

रास गुजरात का दूसरा महत्त्वपूर्ण लोक-नृत्य है। यह गरबा की तरह ही गुजरात की संस्कृति का अभिन्न अंग है। कृष्ण और गोपियों के प्रसंगों से सम्बद्ध रास की इस किस्म का उल्लेख अनेक प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है। यह नृत्य स्त्रियों अथवा पुरुषों द्वारा छोटे-मोटे डंडों की ताल पर गोलाई में नाचा जाता है। संयुक्त रूप से यह कम ही किया जाता है। शरद् पूर्णिमा या जन्माष्टमी अथवा नवरात्रि में इसका रूप देखने योग्य होता है। गाते हुए नर्तक जब डंडों या रंगीन टोकनियों की ताल पर गति से घुमड़ते हैं तब यह नृत्य अपने पूरे उठाव पर होता है। रास की अन्य कई किस्में होती हैं। कुछ के नाम हैं : **दोधियो, पांच्यो, सात्यो, आठियो** और **बारियो**। ये मात्र ताल-भेद हैं, मगर इन्हीं नामों से रास के भेद भी व्यक्त किए जाते हैं। रबारी और मारवाड़ कबीलों में रास की नितान्त अलग शैली मिलती है, जिसे **डोका** कहते हैं। मटकी पर उंगलियों में पहने हुए छल्लों से ताल-ध्वनि करके नाचा जाने वाला स्त्रियों का रास भी उल्लेखनीय लोकनृत्य है। गांधीजी के जन्म-स्थान पोरबन्दर तथा जाम-नगर के निकट बराड़ी नामक स्थानों में मेर जाति के निवासी, जो काफी

स्वस्थ और सुन्दर होते हैं, रास में बहुत निपुण माने जाते हैं। नाचते समय इनके अंग-अंग से लचक फूटती है। रास नृत्य इतना अधिक प्रसिद्ध है कि गुजरात का कोई भी भाग ऐसा नहीं जहां यह न होता हो। यह कच्छ की ओर भी होता है।

डंडों के साथ खेले जाने वाले रास का एक अन्य रूप है **गोफ गुम्फन**। एक रंगीन स्तम्भ के सिरे पर कई रंगों की रस्सियां बांध दी जाती हैं। नर्तक अपनी-अपनी रस्सियों के छोर हाथ में लेकर इस रूप में नृत्य को व्यवस्था देते हैं कि समूचे स्तम्भ पर रस्सियों का एक गुंथा हुआ आवरण बन जाता है। वही आवरण नृत्य की विपरीत गति में खुलता है। हर नर्तक के हाथ में एक डंडा होता है जिसे नृत्य में घूमते हुए वह अपने दोनों ओर के साथियों के डंडे से बजाकर ताल देता है। तमिलनाडु में इसी तरह का एक नृत्य प्रचलित है। उसे **कोलाट्टम** कहते हैं।

सौराष्ट्र के पढारों में लोकनृत्यों का अपना अलग रंग है। पढार मछुआरे होते हैं। गोलाई में बैठकर मंजीरों की ताल पर वे गाते हैं और उसी दौरान नृत्य की मुद्राएं प्रदर्शित करते हैं। कभी पतवार चलाने का भाव दिखाते हैं तो कभी खेत में काम करने का। हर नृत्य में उनकी शारीरिक मुद्राएं अपने करतब दिखाती हैं। **झकोलिया** उनका एक उल्लेखनीय नृत्य है।

सड़क कूटने वाली स्त्रियों का एक नृत्य पिछले दशक में बहुत प्रसिद्ध हुआ है। उसे **टिपणी** कहते हैं। सोमनाथ के निकट चोरवाड़ की स्त्रियां इसे बहुत अच्छा करती हैं। सड़क कूटने के साधन, तीपू, की सहायता से यह नृत्य किया जाता है।

गुजरात के डांग और पंचमहल इलाकों के भीलों पर राजस्थान और मालवा का प्रभाव पड़ा है। बड़े-बड़े ढोलों की ताल पर वे पूर्ण मांसल वेग से नाचते हैं।

गिरि के जंगल में जम्बुर नामक स्थान में, सत्रहवीं शताब्दी में आए हुए अफ्रीकी बसाए गए थे। उन्हें सिद्दी कहा जाता है। जूनागढ़ में तो किसी समय सिद्दियों की एक सैन्य टुकड़ी को ही संरक्षण दिया गया था। गुजरात में बसे हुए इन सिद्दियों के नृत्यों में सौराष्ट्र और अफ्रीका के नृत्यों

का अद्‌भुत मिश्रण हुआ है।

गुजरात के अन्य लोकनृत्यों में सूरत के हलवाहों का **हली**, **थाली** और ढोल पर नाचा जाने वाला भीलों का **भगोरिया**, मीना और गरासियों का **डांडिया** तथा चरवाहों का **घेर** उल्लेखनीय लोकनृत्य हैं।

महाराष्ट्र

राजशेखर ने अपने ग्रन्थ 'काव्य-मीमांसा' (दसवीं शती) में 'दक्षिणा-पथ' के अन्तर्गत महाराष्ट्र का अस्तित्व स्वीकार किया है। आज का महा-राष्ट्र बम्बई राज्य और कोंकण क्षेत्र को मिलाकर बना है। सह्याद्रि की पहाड़ियों और समुद्र-तटों के मिले-जुले प्रभाव ने महाराष्ट्रीय जन को पौरुषपूर्ण और लहरी स्वभाव दिया है। भौगोलिक स्थितियों ने भी इस क्षेत्र की लोकपरक कलाओं को इसी प्रकार अंतरंगता दी है।

महाराष्ट्र के कुछ लोकनृत्य नाट्यों के नाम से पहचाने जाते हैं। वारली, ठाकुर, कतकरी, कोर्कू या गोंड नामक पहाड़ी जातियों के नृत्य **ढोलाचा नाच**, **तंबोरीचा नाच**, एवं **तरपीचा नाच** इसी कोटि में आते हैं। इन नृत्यों की मुख्य विशेषता ताल की गत्यात्मकता में निहित है। तरपी एक सुषिर वाद्य है। नृत्यों के साथ तरपी से दो या तीन स्वरों की संगत पहाड़ी निवासियों के नाचों में आदिम रंग को उभारती है।

ढोलकी और चोंडके वाद्यों के साथ विदर्भ के **डंडा** या **डंडार** नृत्य का उल्लेख यहां अनुचित न होगा। समुद्रवर्ती महाराष्ट्र क्षेत्र के कोली मछु-आरों का एक लोकनृत्य इधर बहुत प्रसिद्ध हुआ है। इसमें एक युवक 'नकवा' (जहाज़ का कप्तान) बनता है और एक युवती कोलिन का अभि-नय करती है। कोलिन रूमाल हिलाकर नाचती है, जबकि नकवा मदो-न्मत्त युवक का अभिनय करते हुए कोलिन के आसपास घूमता है। इस नाच में सहायक नर्तक दो पंक्तियों में आगे-पीछे हटते हुए नाचते हैं, मानो किसी नाव को खेने का दृश्य दिखाना चाहते हों।

महाराष्ट्र की कृषिजीवी जातियों में **गौरीचा** नाच प्रचलित है। इस नृत्य के साथ गाना और पीना अस्वाभाविक नहीं माना जाता। नाचनेवाली मंडलियां घर-घर घूमकर गौरी के प्रति श्रद्धा प्रकट करती हैं। गौरी नृत्य

का उल्लेखनीय अंश जखड़ी या उखाणा है। इसमें नर्तकों की एक मंडली पहेली प्रस्तुत करती है और दूसरी मंडली को उस पहेली का उत्तर नृत्य करते हुए गाकर देना होता है। पहाड़ी जातियों के नृत्यों की तुलना में गौरी नृत्य की संरचना में सुव्यवस्था है।

सिपरी और **गोफ** महाराष्ट्र के उन्नत जन-समाज के लोकनृत्य हैं। सिपरी डंडानाच का श्रृंगारपरक रूप है और **गोफ** दक्षिण के कोलाट्टम की तरह है। आश्विन मास की पूर्णिमा (कोजागिरी) को और कोंकण में गोकुल अष्टमी के दिन रास की अनुरूपता वाला एक नाच देखने में आता है। सिपरी इसीका रूपान्तर है। इसमें रास जैसा मंडलाकार स्वरूप मिलता है और ताल के लिए छोटे-छोटे डंडों का उपयोग किया जाता है। गोफ में रंग-बिरंगी रस्सियों के माध्यम से सभी नर्तक रस्सियों की गुंथन बनाते हैं और नृत्य करते हुए सभी गुंथन को पुनः खोलते हैं। गुजरात में यह **गोफ-गुम्फन** कहलाता है।

लेज़ियम नृत्य महाराष्ट्र की आधुनिक विशेषता है। इसमें अनुशासन का शिक्षात्मक दृष्टिकोण मिलता है। महाराष्ट्र के विद्यालयों में शारीरिक स्वास्थ्य के लिए यह नृत्य आवश्यक समझा गया है। इसमें दो, तीन या चार पंक्तियां बनाई जाती हैं या वृत्त में भी इसकी संरचना की जाती है। लेज़ियम लकड़ी के डंडे पर कसी हुई लौह-श्रृंखला होती है। नाचते समय प्रत्येक नर्तक श्रृंखला को डंडे से टकराकर ताल पैदा करता है। लेज़ियम पौरुषेय प्रवृत्ति का द्योतक नृत्य है।

दिंडी और **काला** नामक धार्मिक नृत्यों का संबंध कृष्ण-लीलाओं से है। दिंडी में स्त्री-पुरुष दोनों भाग लेते हैं। कहते हैं, वारकरी भक्तों ने इसे बारहवीं शताब्दी में प्रचलित किया था।

काला नृत्य गोकुल अष्टमी के दिन देखने को मिलता है। दही की मटकी फोड़ने की लीला से इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसमें पुरुषों के एक वृत्त को आधार बनाया जाता है और उस वृत्त पर दूसरा वृत्त खड़ा किया जाता है। इस प्रकार पिरामिड की शक्ल का नृत्य-दृश्य उपस्थित होता है।

नासिक, अहमदनगर, थाना और पूना में ठाकर जाति के खेतिहर बसे

हैं। इनका **करबड़** नाच इनके सामाजिक जीवन का द्योतक है। यह नृत्य राजधानी में एक बार प्रदर्शित हो चुका है।

महाराष्ट्र का सर्वाधिक सुघड़ नृत्य **दशावतार** है। यह एक प्रकार का नृत्य-नाट्य है। **गौलण** इसी कोटि का पुराना नृत्य है। **तमाशा** नामक मनोरंजन में लावणी गाने वाली लड़कियों का नाच अपनी शृंगारपरक मुद्राओं और भंगिमाओं के कारण सर्वत्र पसंद किया जाता है।

फुगड़ी पारिवारिक महिलाओं का आंगन में किया जाने वाला नृत्य है। **कोमड़ा** (मुर्गा नृत्य) या **झिम्मा** इसी फुगड़ी नृत्य की किस्में हैं। मंगलागौर उत्सव के समय या होली के अवसर पर महाराष्ट्र की स्त्रियां फुगड़ी नृत्य करती हैं।

गोवा

ऐतिहासिक दृष्टि से गोवा का पूर्वनाम गोमंतक है। पुराणों में गोव-पुरी और गोमंत दोनों नाम आते हैं। अरबी भूगोलवेत्ताओं ने इसे सिन्द-बूर या सान्दबूर कहा है। दरअसल हिन्दुस्तान के पश्चिम घाट और अरब सागर के बीच की तंग भूमि गोवा के संस्कारों की मुख्य भूमि है। थलमार्ग से कॅसल रॉक स्टेशन के बाद गोवा का सौन्दर्य सामने आता है। गहरी घाटियों में दूध के झरनों का सागर, फिर मांडवी और जुआरी नदियां। आगे एक ओर समुद्र और दूसरी ओर सह्याद्रि की पहाड़ियां। बीच की भूमि में धान के खेत, देवालय, नारिकेल के पेड़···

गोवा पर लगभग पांच शताब्दियों तक पुर्तगालियों का प्रभाव रहा। इस प्रभाव से गोवा के मूल निवासी अछूते न रह सके। इसका प्रभाव उनकी संस्कृति पर भी पड़ा।

लोक-नृत्य-नाट्य के तीन रूप गोवा में उपलब्ध हैं—**झगोर, खेल और दकनी।**

झगोर मछुआरों का मनोरंजनप्रधान नृत्य है। जातीय अनुष्ठानों से इसकी शुरूआत होती है। निश्चित स्थान में नृत्याभिनय करने वाली मछुआरों की टोली एकत्र होती है और परम्परागत आनुष्ठानिक गीत गाती है। फिर वहीं से वह जुलूस के रूप में नाचती-गाती मुख्य नृत्यस्थान तक आती है। अभिनय रात में देर से शुरू होता है। क्रास के चिह्न को नृत्य-

गीत के माध्यम से व्यक्त करते हुए मछुआरे भगोर नृत्य आरम्भ करते हैं। घुमट और भांभ साथ में वजाए जाते हैं। वजैये इस नाच में पूरी उमंगों के साथ सम्मिलत होते हैं।

ईस्टर एवं कार्निवाल सप्ताह में खेल करनेवाली मंडली गांव के पटेल के घर से अपने खेल नृत्य का सूत्रपात्र करती है। हर गांव में खेल करने का स्थान पहले से चुन लिया जाता है। उस जगह सजे-धजे पात्र अपने अगुओं के नेतृत्व में मनोरंजन करते हैं। इनमें नाच का अंश ज़्यादा होता है। यह अंश संवादों और गीतों के सहारे मुखर होता है।

दकनी गोवा की कोलावन्त (कलाकार) के नाम से पहचानी जाने वाली पेशेवर नर्तकियों का लोकपरक नृत्य है। यह नृत्य गीतों के सहारे उठान पर आता है। शादी-ब्याह के समय ये नर्तकियां अतिथियों के मनोरंजनार्थ आमंत्रित की जाती हैं। बहुत सजधज कर ये नृत्य के लिए सामने आती हैं। इनके नृत्यों में प्राय: ऐसे भाव निहित होते हैं जो या तो नाविक और उसकी प्रेमिका के संवादों को प्रकट करते हैं या फिर प्रेम-प्रसंग को उद्घाटित करते हैं।

सांस्कृतिक दृष्टि से गोवा कन्नड़, पुर्तगाली और मराठी पर निर्भर रहा है। मगर गारड़ा कृषक जोकि यहां की भूमि के आदिवासी हैं, पुरातन गोमंतक संस्कृति को अब भी सहेजे हुए हैं। इनके नृत्यों से गोवा के पुराने लोकनृत्यों की भलक मिलती है।

ढालो और **फुगड़ी** स्त्रियों के पारम्परिक गीत-नृत्य हैं। ये बहुत ही सरल और घरेलू किस्म के हैं।

मंडो गोवा का प्रसिद्ध गीत-नृत्य है। धीरे-धीरे इसका नृत्यपरक रूप समाप्त होता जा रहा है। प्रेम की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति इस गीत-नृत्य में देखी जाती है।

5

दक्षिणी क्षेत्र

आंध्र-प्रदेश

आन्ध्र प्रदेश अनेक नृत्य-नाट्यों के लिए प्रसिद्ध है। **कुचिपुडी, यक्ष-गान, कुरुवंजि** और **केलिका** जैसे शास्त्रीय एवं विकसित नृत्य-नाट्यों के अतिरिक्त कुछ लोकनृत्य ऐसे भी हैं जिन्हें आन्ध्र के सांस्कृतिक मानचित्र में रखा जा सकता है। **मधुरी, बत-कम्मा, कुम्मी** और **कोलाट्टम** उल्लेख-नीय लोकनृत्य हैं। घुमन्तू बंजारों के लोकपरक नाचों ने सर्वप्रथम आन्ध्र की लोक-संस्कृति की ओर बाहरी राज्यों का ध्यान आकृष्ट किया। ये बंजारे इस क्षेत्र में लम्बाड़ी कहलाते हैं। लम्बाड़ियों के अलावा सिद्दी, चेंचू, गदबा, परजा (पोरोजा) और कंध आदिवासियों के नृत्य भी हैं जिन्हें हम आन्ध्र-संस्कृति के पटल पर देखते हैं।

कुछ वर्ष पूर्व आन्ध्र प्रदेश की ओर से राजधानी में एक ऐसा नृत्य प्रस्तुत किया गया जो जुलूस के रूप में था। संमूचा नृत्य ताल, गति और भंगिमा की दृष्टि से आकर्षक तो था ही, वह एक झांकी का प्रभाव भी पैदा करता था। इस नृत्य में नर्तकों द्वारा एक मूर्ति ले जाई जाती है। दो मुख्य नर्तक होते हैं—एक स्त्री और दूसरा पुरुष। स्त्री अपने सिर पर बांस के सहारे देवी की एक छतरी संभाले नृत्य करते हुए आगे चलती है। इस नृत्य में वादक नर्तकी के पीछे चलते हैं। पुरुष नर्तक के हाथ में तलवार होती है और अन्य सहायक नर्तक छतरी के दायें-बायें तलवार लिए नाचते हैं। साथ में डप्पू आदि वाद्य बजाए जाते हैं, जिससे नादस्वरम् की धुन ऊंची होती जाती है। एक विचित्र समां होता है ऐसे नृत्य का।

आन्ध्र के विशाखापट्टम के वनों में गदबा आदिवासी बसे हैं। होली या दशहरा के अवसर पर इनके सामूहिक नृत्य बहुत आकर्षक होते हैं।

एक अंग्रेज़ यात्री के शब्दों में गदवा स्त्री-पुरुष वर्तुलाकार घेरे में नाचते हैं। स्त्रियां कभी-कभी जोड़ी बनाकर नाचती हैं। कमर पर हाथ देना इन आदिवासियों का स्वाभाविक नृत्य-धर्म है।

श्रीकाकुलम् ज़िले के परजा या पोरोजा आदिवासी जाति के सम्बन्ध में डब्ल्यू० फ्रान्सिस का वर्णन द्रष्टव्य है :

"इन प्रसन्नमुख कन्याओं का नृत्य करता हुआ दल बहुत भला लगता है, सबकी सब श्वेत वस्त्र पहने होती हैं, जो उनके घुटने तक भी नहीं पहुंचता। अंगुलियों में बड़ी-बड़ी मुद्रिकाएं; पैरों के पंजे में पीतल के घुंघरू; मांसल सुडौल और सुन्दर बांहों और टांगों पर, कमर से कन्धे तक और टखनों से घुटनों तक गुदना; बायीं बांह का आगे का भाग पीतल के भारी आभूषणों से भरा हुआ; पांवों में भारी-भारी पीतल के घुंघरू। ज्योंही तरह-तरह के नगाड़ों का संगीत छिड़ता है, लड़कियां एकत्र हो जाती हैं। अचानक वाद्य का बजना तेज़ हो जाता है, लड़कियां एक लम्बी पंक्ति में खड़ी हो जाती हैं और प्रत्येक लड़की अपना दायां हाथ अपने आगे की लड़की की पीठ पर डाल देती है और उससे आगे की लड़की की बायीं कुहनी को थाम लेती है। इस प्रकार एक शृंखला में बंधी, ये नगाड़ों की लय पर ताल देती हुई, नाचती रहती है और साथ ही गाती भी जाती हैं। वे अपने-आपको टेढ़ी-मेढ़ी पंक्तियों, वृत्तों, भिन्न-भिन्न रूपों में बदलती रहती हैं और कई बार चमकदार रंगीले सर्पों-सी दिखाई देती हैं।"

मथुरी नृत्य स्त्री और पुरुषों का मिला-जुला नृत्य है। इसका सर्वाधिक प्रचलित रूप आदिलाबाद ज़िले में दिखाई देता है। कहते हैं, यह नृत्य उत्तर की ओर से आया और आन्ध्र के लोकनृत्यों में खप गया। इसमें नर्तक प्रायः दो दलों में बंट जाते हैं। पुरुषदल डंडों की ताल पर गमकता है और स्त्री-दल पुरुषों का अनुसरण करते हुए केवल हाथ से ताली देकर नाचता है। ढोल और झांझ की ध्वनि संगत प्रदान करती है।

तेलंगाना क्षेत्र की स्त्रियां बत-कम्मा नामक नृत्य द्वारा सहजाबाई नामक एक बहू की कहानी का अभिनय प्रस्तुत करती हैं। सहजा ाई को उसके सास-ससुर ने बहुत कष्ट दिया था। उसकी याद में बत-कम्मा का आयोजन प्रायः उस अवसर पर किया जाता है जब कोई उत्सव या विवाह-

प्रसंग हो।

कुम्मी युवा कन्याओं और स्वस्थ युवतियों का नृत्य है। लड़कियां कुम्मी गीत गाते हुए वृत्त में नाचती हैं। यह फूल के खिलने और बंद होने का आभास देता हुआ नृत्य है। इससे मिलता-जुलता एक दूसरा नृत्य कोलाट्टम है। फर्क इतना है कि नाचते समय कुम्मी में तालियों से काम लिया जाता है, जबकि कोलाट्टम में छोटे-छोटे डंडों से ताल दी जाती है। ये दोनों नृत्य-रूप तमिलनाडु में भी पाए जाते हैं।

लम्बाड़ी आन्ध्र के बंजारों की एक यायावर जाति है, मगर अब ये हैदराबाद के निकट बस गए हैं। मध्यकालीन रंगों के वस्त्रों में लम्बाड़ी औरतें प्रायः दिखाई देती हैं। इनके शरीर पर विविध प्रकार के गहने और मालाएं पड़ी होती हैं और नाचते समय अपने सिर पर पीतल के बड़े-बड़े घट रखकर ये मैदान में उतरती हैं। खासकर होली और विवाह के समय लम्बाड़ियों के नाच देखने लायक होते हैं। ये प्रायः समूह में नृत्य करते हैं।

आन्ध्र प्रदेश में प्रचलित ग्रामीणों के नृत्यों के अतिरिक्त राज्य के जंगलों और पहाड़ों में बसे आदिवासियों के नृत्य भी हैं। नेलूर और कुर-नूल में पूर्वी घाटों के भू-न निवासी चेंचू आदिवासी पाए जाते हैं। इस जाति की युवा स्त्रियों के नृत्य बहुत रम्य होते हैं। कहा जाता है कि नृसिंह अवतार को चेंचू कन्या ने ही शान्त किया था। चेंचू सामूहिक नृत्य करते हैं। विजगापट्टम प्रभाग में गदबा, गंजाम ज़िले में परजा और कंध आदिवासी निवास करते हैं। ये आदिवासी अपनी तरह से नाचते और गाते हैं। इनपर किसी बाहरी संस्कृति का प्रभाव यकायक नहीं आता। न ये दक्षिण से प्रभावित होते हैं न उत्तर से। विकसित कलारूपों का प्रभाव भी इनपर नहीं पड़ता। दोनों जातियां अपने नृत्य-रूपों में अत्यन्त गति-शील हैं। इनमें परजा स्त्रियां और पुरुष और भी आगे हैं। इनके अपने वाद्य हैं, अपने गीत हैं। नाच के लिए हर वक्त तैयार ये आदिवासी मिल-जुलकर नाचते हैं। सबसे उल्लेखनीय बात यह है कि जातिगत वैविध्य के बावजूद नृत्य में इनकी अभिव्यक्ति वृत्ताकार ही पाई जाती है। परजा स्त्रियां पांच-पांच किलोग्राम वज़न की पायल पहनती हैं; चेंचू कमर पर भारी आभरण धारण करती हैं, मगर नाचते समय इनकी गति में कमी नहीं

आती। गदवा और कंध स्त्रियां एक-दूसरे के गले में हाथ डालकर गोलाई में नाचती हैं। इन आदिवासियों में पुरुष या स्त्री कोई भी हो, नाच के समय अपने को बिल्कुल भूल जाता है। तब ऐसा लगता है मानो लोक-नृत्य उनके जीने का एक महत्त्वपूर्ण साधन है।

सौराष्ट्र की भांति हैदराबाद में मुस्लिम शासकों ने अफ्रीका के सिद्दियों को बसाया था। अब ये आन्ध्र की जनसंख्या के अंश बन गए हैं। इनके नृत्य अफ्रीकी नृत्यों की आदिम ललक से भरपूर होते हैं। एक तरह से ये युद्ध-नृत्य करते हैं और इनमें पुरुष ही मुख्य रूप से नाचते हैं।

डप्पू वाद्य पर किया जाने वाला एक और लोकनृत्य डप्पू आन्ध्र की विशेषता है। नर्तक घुटनों तक धोती पहने होते हैं और नाचते समय स्वयं डप्पू वाद्य इस खूबी से बजाते हैं कि समूचा नृत्य ताल की संरचना में दर्शकों को बहा ले जाता है।

तमिलनाडु

तमिल के एक प्राचीन ग्रन्थ 'तोलकाप्पियर' में तिरुपति की पहाड़ी से लेकर कन्याकुमारी तक फैले हुए प्रदेश को 'तमिल का सुन्दर देश' कहा गया है।

तमिलनाडु मंदिरों का प्रदेश है। कांचीपुरम्, मदुरै, श्रीरंगम् रामेश्वरम्, कुंभकोणम् एवं तिरुक्कलुक्कुनरम् जैसे तीर्थ इसी क्षेत्र में हैं। इसी भूमि पर चिदम्बरम् के मंदिर में भगवान् शिव की विश्व-प्रसिद्ध नटराज प्रतिमा भी है।

मद्रास से कन्याकुमारी तक व्याप्त इस खण्ड की सांस्कृतिक इकाई, धार्मिक पृष्ठभूमि के कारण, आहत होने से रक्षित रही है। इससे एक बात यह भी हुई कि लोकपरक एवं शास्त्रीय कलाओं में बहुत बड़ा अन्तर नहीं हुआ। दोनों के प्रेरक सूत्र प्रायः एक ही रहे। प्रायः समस्त कलाएं मंदिरों के विविध उत्सवों और त्यौहारों से सम्बद्ध हैं। घुमन्तू नर्तकों और लोक-गायकों की मंडलियां ऐसे अवसरों पर मंदिरों के आसपास ही मिल जाती हैं।

विश्वविख्यात भरतनाट्यम् तमिलनाडु की देन है। लोकानुरंजक

कलारूपों में महत्त्वपूर्ण नृत्य हैं—**कावड़ी, कारकरम्, पाविक्कूतु, ओइलाट्टम्, तेरुक्कूतु, कुम्मी और कोलाट्टम्।**

कावड़ी लकड़ी की बनी एक प्रकार की चन्द्राकार मेहराव होती है। इसे रंगीन वस्त्रों से अलंकृत कर एक लम्बे डंडे के सहारे उठाया जाता है। भगवान् मुरुगन के भक्त मंदिर की ओर जाते समय कावड़ी उठाकर नृत्य करते हैं। उस नृत्य में शरीर को कई तरह से दोलायित किया जाता है, मगर इस बात की सावधानी बरती जाती है कि कावड़ी हाथ से न गिरे। यह नृत्य जुलूस की शक्ल में होता है। इसकी तुलना आन्ध्र प्रदेश के क ला नृत्य से की जा सकती है। प्रभाव और प्रकृति में दोनों समान हैं।

कारकरम् नृत्य देवी मरिअम्मा की पूजा से सम्बन्धित है। इसमें प्रायः एक लड़की सिर पर मरिअम्मा की प्रतिमा संतुलित कर नृत्य करती है। प्रतिमा के ऊपर एक मृत्तिका-पात्र भी रख लिया जाता है। सिर पर इन वस्तुओं को बिना सहारा दिए संतुलित रखकर नाचना ही इस नृत्य की विशिष्टता है। रंगे हुए वस्त्र पहने वादक नागस्वरम् और मदल्लम् से नर्तकी की संगत करते हैं।

पाविक्कूतु में वस्तुतः पुतलियां नचाई जाती हैं। मगर ओइलाट्टम् लोकदृष्टि से अधिक प्रिय नृत्य माना गया है। मन्दिरों के उत्सवों के समय इसे आयोजित किया जाता है। नर्तकों का अगुआ वड़ियार कहलाता है। इस नृत्य की आधारकथा भगवान् मुरुगन और वल्लि की प्रणय-लीला से जुड़ी है। उत्तर भारत में जिस प्रकार राधा-कृष्ण की लीलाएं लोकनृत्यों का आधार बनीं, उसी तरह तमिलनाडु में मुरुगन की पौराणिक कथा ने स्थान पाया। मुरुगन को भगवान शंकर का पुत्र माना जाता है।

तेरुक्कूतु लोकनाट्य है, किन्तु इसमें लोकनृत्यों के विविध रूप प्रयुक्त किए जाते हैं। इसकी शैली आन्ध्र के **विथिनाटकम्** या कर्नाटक के **यक्षगान** के अनुरूप है।

कुम्मी और कोलाट्टम् स्त्रियों के लोकनृत्य हैं। ये नृत्य रात्रि के समय ज्योतित दीप के आसपास गोलाई में किए जाते हैं। इन्हें देखकर गुजरात के गरबा का स्मरण हो आता है। पिन्नल कोलाट्टम् लम्बी रेशमी डोरों के साथ नाचा जाता है। यह गुजरात के गोफ-गुम्फन के अनुरूप है। पुरुषों के

इस नृत्य के और भी कई रूप तमिलनाडु में मिलते हैं, जिसके उल्लेखनीय भेद हैं **कलियाल** और **वांयदा नई**।

लड़कों द्वारा जो नृत्य किया जाता है, उसे ओइलाट्टम् या **ओइला-कुम्मी** कहते हैं। इसमें युवक पैरों में घंटियां बांधकर नाचते हैं। नाच में 'कोलु' यानी डंडे का प्रयोग ताल के लिए किया जाता है। 'आट्' का मतलब है खेल। लोकनृत्य वस्तुतः सर्वसाधारण के लिए खेल होते हुए भी आनुष्ठानिक महत्त्व रखते हैं।

कावड़ी नृत्य, जिसकी चर्चा ऊपर की गई, अब समाप्त होता जा रहा है। कावड़ी के गीत भगवान् मुरुगन के सम्बन्ध में होते हैं, जिनका उपयोग अन्य नृत्यों में भी किया जाता है। आम लोगों से हटकर 'कावड़ी' कहीं-कहीं तमिल क्षेत्र के व्यावसायिक नर्तकों की चीज़ हो गया है।

कारकरम् बहुत पुराना नृत्य-प्रकार है। इसमें ताल का महत्त्व और नृत्य-रूपों से कहीं अधिक है। किसी समय इसे **कुडाक्कूतु** कहते थे, जिसका मतलब है मटके का नाच। इसमें नर्तक माथे पर रंग-बिरंगा पात्र रखकर नाचता है। पात्र के मुख पर कलगी की तरह एक तोते की प्रतिमा रख दी जाती है। वस्तुतः यह प्रतिमा सज्जा के लिए है। संयोगवश छत्तीसगढ़ में प्रचलित सूआ नृत्य इस संदर्भ में यहां स्मरण किया जा सकता है, किन्तु दोनों में इतना अन्तर है कि एक पुरुषों का नृत्य है और दूसरा स्त्रियों का।

तमिलनाडु की लोकपरक कलाओं में **पोइक्काल कुइराई** नामक ढोल नृत्य, **भगवत्मेला** और **विल्लूपाट्टु** का उल्लेख्य स्थान है। वहां इनसे सम्बद्ध लोकनृत्यों के कुछ रूप भी प्रचलित हैं।

कर्नाटक

कन्नड़ क्षेत्र समुद्र-पट्टियों, घाटों और छोटे-छोटे पठारों से पूर्ण है। कारवार, अंकोला, होनावर और भटकल जैसे बन्दरगाह इसके पास हैं। यदा-कदा कन्नड़ देश को दक्षिण भारत की छत कहा जाता है। सांस्कृतिक समृद्धि के अतिरिक्त यह क्षेत्र काव्य और अन्य कलाओं में भी बहुतेरी क्षमताओं को उद्घाटित करता है।

इस विशिष्टता के अतिरिक्त कन्नड़ प्रदेश के लोक-जीवन में इतिहास के सम्बन्ध बड़े गहरे हैं। वर्तमान इतिहास-शून्य नहीं है। हर नई परिस्थिति में कर्नाटक के जन ने इतिहास के सन्दर्भ में ही स्वयं को परिवर्तित किया है। कलाओं के क्षेत्र में भी इस प्रक्रिया का प्रभाव स्पष्ट है।

कर्नाटक के लोकनृत्य प्रायः धार्मिक उत्सवों और पूजा-अनुष्ठानों के साथ जुड़े हैं। मेर जाति (पुत्तूर तालुका) की स्त्रियां 'दूदी' नामक वाद्य के साथ गोलाई में नाचती हैं। नाचते समय तालियां बजाती हैं और शरीर को आगे-पीछे घुनाती हैं। गणेश और शिव की पूजा के समय रानेयर जाति के पुरुष स्वयं को शिव का गण मानकर डंडों की ताल पर विचित्र प्रकार का नृत्य करते हैं। शिव की स्तुति के इनके गीत भी आकर्षक होते हैं।

आज भी पश्चिमवर्ती घाटों की जातियां भूत-प्रेत के निवारणार्थ आदिम ढंग से नाच करती हैं। इनके नाचों में युद्ध की स्मृतियां और देवी-देवता जगाने के लक्षण स्पष्ट हैं। शरीर में जब देवता प्रविष्ट होता है, तब नाच में उन्मुक्त चेष्टा लक्ष्य की जाती है।

"चांदनी रातों में, जब बड़े उत्साह से ढोल पीटने की आवाज़ सुनाई देती है और नागस्वरम् का तीव्र, तीखा स्वर गूंज उठता है तब गांव के लोग समझ जाते हैं कि भूत कोला नृत्य शुरू हो गया।"

कर्नाटक के दक्षिण कनारा इलाके में तुलवा जाति के लोगों में इस नृत्य की बहुत प्रतिष्ठा है। इसके अनुसार जिन प्रेतों का आह्वान किया जाता है उनके नाम हैं—अनप्पा, बोब्बायी, जारंडाया, जुमाति, काल-कुडा, कल्लूर्ति, कोडा मंथाया, महिषांताया, पंजुर्ली, पिलि चावंती और राक्टेश्वरी। कुछ अर्ध ऐतिहासिक वीरों और योद्धाओं के प्रेतों की भी इसी नृत्य में पूजा की जाती है। कोटि और चेन्नाया ऐसे ही दो वीर भाई थे, जिन्हें इस नृत्य में स्थान प्राप्त है।

"भूत कोला नृत्य के समय नर्तक रंग-बिरंगी पर सादा पोशाक पहन-कर तथा मुंह को तरह-तरह से रंगकर इधर से उधर थिरकता है तथा अपने घुंघरू बजाता है। भूत को अपने में समाविष्ट करने के लिए वह सिंगार के फूल लेकर मूर्ति को घूरता है, कांपता है तथा रस-विभोर हो उठता है, धीरे-धीरे वह चेतना के एक दूसरे ही लोक में जीने लगता है।

संगीत-वाद्यों से उत्पन्न ध्वनि यह सूचित करती है कि प्रेतात्मा उनमें प्रवेश कर गई है। उसके वाद एक खास लय और गति में नृत्य चलता रहता है और श्रद्धालु दर्शक बड़ी उत्सुकता से सब कुछ देखते रहते हैं।"

कुनवी, जिन्हें दक्षिण कन्नड़ में मराठा कहते हैं, अपने लोकनृत्यों के लिए प्रसिद्ध हैं।

फसल पकने पर कर्नाटक-निवासी राजस्थान के कच्छी घोड़ा नाच की तरह **घोड़ा नाच** भी करते हैं। राजधानी में इस नृत्य का प्रदर्शन हो चुका है। वांस की कमचियों से घोड़े का ढांचा वनाकर, उसे रंग-विरंगे कागज़ों से सजा दिया जाता है। यही ढांचा नर्तक कमर में बांधकर नाचता है। कभी-कभी वहुत सारे नर्तक घोड़ा नाच करते हैं।

प्रेत नृत्य जिन पिछड़े लोगों में प्रचलित है, उनमें विचित्र गाथा गाते हुए नर्तक हाथ में तलवार लेकर इस ढंग से नाचते हैं कि भय का वातावरण बन जाता है।

वैद्य नृत्य नागराज की पूजा से सम्बन्धित है। मैसूर राज्य में नागों को पूजने वाला पुजारी नर्तक को अपने समक्ष आमंत्रित कर पहले एक दोहा कहता है। पुजारी स्वयं को अर्द्धनारीश्वर का प्रतिरूप मानता है। इसी नृत्य का प्रभाव बाद में यक्षगान पर पड़ा।

बलाकाट कोड़वा लोगों का नाच है। फसल आने पर और त्यौहारों के समय इस नृत्य को देखा जाता है। नर्तक 'कुकुआ' नामक लम्बा चोगा पहनकर और माथे पर खास ढंग की पगड़ी बांधकर तथा हाथ में कटार उठाए नाचते हैं।

कर्नाटक राज्य की अन्य लोकधर्मी कलाओं में **पुतली** नृत्य का उल्लेख आवश्यक है। इसमें रात के समय पुतलियां नचाई जाती हैं और नाच के साथ भगवान मार्कण्डेय की कहानी कही जाती है।

एक और प्रसिद्ध लोकनृत्य है **करगा**। करगा एक पात्र होता है जिसे शक्तिपूजा से सम्बन्धित माना जाता है। करगा नृत्य के पूर्व इस पवित्र पात्र में चावल रखे जाते हैं और उसकी फूल-पत्रों से पूजा की जाती है। नृत्य का आरंभ मंदिर से होता है। इस नृत्य के लिए जिसे चुना जाता है वही व्यक्ति पात्र को धारण कर इस जुलूस नृत्य की शुरुआत करता है।

नर्तक कई तरह से नाचता है। उसे इस बात की पूरी सावधानी बरतनी पड़ती है कि करगा पात्र गिरने न पाए। करगा में सारा गांव भाग लेता है। इस नृत्य के अनेक भेद हैं, जैसे बंगलौर का **धर्मराय करगा, जाड़े करगा, ज्योति करगा, चित्र-गोपुर करगा, ओनाके करगा** (इसमें पात्र के स्थान पर चावल कूटने की ढेंकी काम में लाई जाती है), **चेमबिना करगा** (इसे मिट्टी के बरतन रखकर किया जाता है) आदि।

करगा में धोती और केसरिया पगड़ी पहने पुरुष नर्तक होते हैं। नागस्वरम्, डोलू, सामेल, तासे, घुंघरू वगैरह करगा नृत्य के साथ उपयोग में लाए जाते हैं। इस नृत्य से मिलता-जुलता नृत्य आन्ध्र प्रदेश में भी प्रचलित है।

कर्नाटक के प्रसिद्ध नृत्य-नाट्य **यक्षगान** में लोककलाओं और आधुनिक परिष्कार का अद्‌भुत समन्वय हुआ है। कर्नाटक के भिन्न-भिन्न स्थानों पर इसके अलग-अलग नाम मिलते हैं।

केरल

भौगोलिक दृष्टि से भारतवर्ष में केरल की स्थिति थोड़ी भिन्न है। सागर के साथ इस धरती को वनों और पर्वतों का वैभव भी मिला है। इसलिए प्राकृतिक सरलता के साथ यहां के जीवन में सागर का मंथन भी रेखांकित हुआ है। इसी सन्दर्भ में केरल प्रदेश में नृत्य को महत्त्वपूर्ण स्थान मिल पाना आसान हुआ है। **कथकलि** उसका उत्कृष्ट रूप है।

नृत्य यहां हर प्रसंग और उत्सव के साथ जुड़े हैं। यह प्रायः कठिन होता है कि केरल के लोकनृत्यों और परम्परागत नृत्यों में कहां भेद किया जाए।

यहां के मुसलमानों में, जिन्हें मोपला कहा जाता है, **कोलकलि** नामक लोकनृत्य बहुत प्रसिद्ध है। यह पुरुषों का नृत्य है। इसमें आठ-दस व्यक्तियों से लेकर चालीस-पचास व्यक्ति तक सम्मिलित हो सकते हैं। नाचने वालों के हाथ में छोटे डंडे होते हैं, जिन्हें आपस में टकराकर ताल पैदा की जाती है। यह नाच गोलाई में किया जाता है। नर्तक नाचते हुए जब बैठने की मुद्रा प्रदर्शित करते हैं तो अपने डंडे को धरती से छुआते हैं।

यह नृत्य धीरे-धीरे उठाव पर आता है और समाप्ति की ओर इसमें विशेष गति आ जाती है। कोलकलि यद्यपि मोपलाओं का नाच है, तथापि इसकी खास विशेषता यह है कि इसके साथ जो गीत गाए जाते हैं उनका सम्बन्ध हिन्दू-देवताओं से होता है।

भद्रकलि नृत्य मंदिरों में आयोजित किया जाता है। यह आनुष्ठानिक नृत्य माना जाता है। इसके अन्त में **तियाट्टु** (अग्निनृत्य) होता है। मुख्य नर्तक इसमें अपना चेहरा काला पोत लेता है और विचित्र रूप बनाकर तियाट्टु में भाग लेता है। वस्तुतः वह अपना यह रूप असुर दारुका को मारने के लिए बनाता है। इसमें कथा भंगिमाओं से व्यक्त की जाती है।

केरल की स्त्रियों का **काईकोट्टिकलि** नामक नृत्य बहुत आम है। यह वृत्त में आयोजित किया जाता है। दीपक या किसी ज्योति के आस-पास घूमकर लड़कियां, हाथ से तालियां बजाते हुए इसे नाचती हैं। विशेष रूप से ओणम उत्सव के समय इसका पूर्ण प्रभाव देखने को मिलता है।

वेलकलि यहां के नायर पुरुषों का बहुचर्चित लोकनृत्य है। त्रावण-कोर के कुछ नायर परिवारों में इसकी परम्परा आज भी चली आ रही है। मार्च या अप्रैल के महीने में जब त्रिवेन्द्रम में पद्मनाभ स्वामी का उत्सव मनाया जाता है, वेलकलि का प्रदर्शन देखने लायक होता है। यह नृत्य कुरुक्षेत्र में हुए महाभारत युद्ध का स्मरण दिलाता है। नायर नर्तक स्वयं कौरव का अभिनय करते हैं। पांडवों के लिए प्रतीकवत् उनकी प्रति-माएं बना ली जाती हैं। प्रत्येक नर्तक के दाहिने हाथ में लकड़ी की तलवार तथा बायें हाथ में ढाल होती है। नृत्य लगभग घंटा-डेढ़ घंटा होता है। ऐसा लगता है मानो युद्ध हो रहा हो।

वेलकलि से मिलता हुआ एक और लोकनृत्य है—**पुलयारकलि**। पुलयार केरल के हरिजन हैं। पुलयारकलि हरिजनों का अपना नृत्य है, फिर भी सभी जातियों द्वारा नाचा जाता है। ओणम या विशु पर्व के समय इसे देखा जा सकता है। इसमें पांडवों की प्रतिमाओं के स्थान पर असुरों की प्रतिमाएं बना ली जाती हैं।

मलाबार में भगवती के पुजारी **थेरआट्टम** नामक नृत्य करते हैं। यह नाट्य-प्रधान नृत्य है। इसमें मुखौटे धारण किए जाते हैं।

केरल में, विविध जातियों के अपने अलग लोकनृत्य हैं। पन्नियार, कन्नियार या पानन जातियों में उनके अपने नृत्य प्रचलित हैं। जातियों के अनुसार ही उनके नृत्यों के नाम हैं। कोचीन और मलाबार के परयार भगवती की पूजा के लिए विशेष नृत्य करते हैं। शिव और सुब्रह्मण्यम् के गीत सभी गाते हैं। इनमें अक्सर स्त्रियां गाती हैं और पुरुष नाचते हैं।

केरल के लोकनृत्य समग्र रूप से जनपदीय संस्कारों से युक्त हैं। बताया जाता है कि केरल में पचपन प्रकार के लोकनृत्य प्रचलित हैं।

6

द्वीपीय क्षेत्र

अंडमान-निकोबार द्वीप

अंडमान-निकोबार द्वीप 'कालापानी' के नाम से प्रचलित रहे हैं। इन द्वीपों का अस्तित्व हर भारतीय के मन में स्वातन्त्र्य-आन्दोलन की स्मृतियों से जुड़ा है। अंडमान-निकोबार लगभग दो सौ पचास द्वीपों का समूह है। यह समूह भारत की मुख्य भूमि से करीब आठ सौ मील दूर बंगाल की खाड़ी में फैला हुआ है। इंडोनेशिया से इन द्वीपों की दूरी नब्बे मील है। बर्मा भी सवा सौ मील के फासले पर है। सामरिक दृष्टि से अंडमान-निकोबार हमारी पूर्वी सागर सीमा के पहरेदार द्वीप हैं।

सागर के इन्द्रधनुषी सौन्दर्य से घिरे इस द्वीप-गुच्छ के मूल निवासियों का जीवन जंगल की आदिम हवाओं और समुद्री अन्न से बना है। प्रकृति ने इन्हें काला रंग दिया है और जंगलों ने अपने प्रभाव से युक्त किया है।

यहां के अधिकांश द्वीपों में आबादी नहीं है। आबादी और व्यवस्था वाले मुख्य द्वीप ये हैं : अंडमान, कार निकोबार और ग्रेट निकोबार। छोटे अंडमान और निकोबार में ओंगी जाति के निवासी रहते हैं। ओंगी नीली स्याही की तरह सांवले हैं। अफ्रीकियों की भांति इनके सिर पर घुंघराले बाल होते हैं। ये कद में नाटे मगर बुद्धि में तेज़ होते हैं। इन्हीं लोगों के नृत्यों में सबसे अधिक आदिम छाया मिलती है। ओंगी गोलाई में नाचते हैं। इनके नाच भूत-प्रेत और अंधविश्वासों के भय से मुक्त नहीं हैं। जंगली ढोलों की थापों पर ओंगी रात-रात-भर नाचते हैं। अक्सर दूर जंगलों में ढोल बजते हैं तो लगता है मानो हवा में जंगल की मादकता आ घुली हो।

ओंगी संख्या में पांच सौ से अधिक नहीं होंगे। ये स्वयं को 'सच्चा आदमी' मानते हैं। सामूहिक जीवन इन्हें प्रिय है। इनके झोंपड़ों में आग

नहीं बुझती। नाच में गाने का काम पुरुष करते हैं, स्त्रियां तब अपना ध्यान मात्र नाच पर ही रखती हैं। ढोलक की आवाज़ के साथ स्त्रियां पुट्ठों पर हाथों से ताल देती हैं। यह मुद्रा वस्तुतः यौन इच्छाओं को व्यक्त करती है। नर्तक लड़कियां कमर में पत्तों की झालर बांधती हैं। जंगली फूलों को भी ये सिर पर सजाती हैं। नाच के समय प्रयुक्त गीतों में अज्ञात शक्तियों के प्रति पूजा का भाव, शिकार की स्मृतियां या किसी यौन-कल्पना के टूटे हुए सूत्र मिलते हैं।

इस द्वीपसमूह की अन्य जातियों में शौंपेन कुछ गोरे और लम्बे कद के हैं। जारवा और सेंटीनल आदिम स्वभाव के हैं। इन्हें सुधारने के सभी प्रयत्न व्यर्थ हुए हैं। ये घने जंगलों में रहते हैं। बाहर के आदमी को देखते ही मार डालते हैं। इसलिए आज तक इन लोगों के बारे में सही-सही जानकारी एकत्र नहीं की जा सकी। कहते हैं, जारवा संख्या में पांच हज़ार से ज़्यादा नहीं। प्रायः नंगे रहते हैं। शरीर से मज़बूत हैं, मगर पशुओं की तरह भीरु और आक्रामक हैं।

निकोबार लोग अपने झोंपड़ों के आगे खुले में नाचते हैं। नर्तक एक-दूसरे की पीठ पर बांहें बांधकर पंक्तिबद्ध स्थिति में नाचते हैं। अगुआ नर्तक गीत उठाता है और वही नाच का संचालन करता है। नाचते समय स्त्रियां प्रायः उछाल लेती हैं और पंजों पर शरीर को उठाकर चक्कर में इस तरह घूमती हैं कि लगता है, बैले का कोई अंश इनके आदिम नाच में प्रविष्ट हो गया है।

वैसे तो अंडमान-निकोबार की राजधानी पोर्ट ब्लेयर में भारत के कई भागों के निवासी मिलते हैं, मगर उनका मूल निवासियों से कभी उपयुक्त सम्पर्क नहीं हो सका। इन द्वीपों के बारे में बहुत-सी बातें अभी अज्ञात हैं। इसी कारण समूचे द्वीपों के लोकनृत्य का विश्लेषण सम्भव नहीं होता।

लक्षद्वीप-मिनिकाय और अमिनदिवी द्वीप-समूह

भारत के पश्चिमी समुद्र में लक्षद्वीप-मिनिकाय और अमिनदिवी द्वीप-समूह हैं। इस समूह में कुल बीस द्वीप हैं जो अरब सागर से पचास हज़ार वर्गमील क्षेत्र में फैले हैं। यहां के निवासियों में सबसे बड़ी संख्या कोया

लोगों की है। कोया इस्लाम धर्म को मानने वाले लोग हैं। इनके नाचों में शौर्य की भंगिमा है। इनका परिचाकाली नामक नृत्य तलवार और ढाल की सहायता से चलता है। यह नाच शादी-ब्याह के अवसर पर तो होता ही है, अन्य खुशी के मौकों पर भी किया जाता है। यह नृत्य मुख्यतः पुरुषों द्वारा नाचा जाता है। आम तौर पर रात को नृत्य किए जाते हैं। पहले नृत्य की गति धीमी होती है और बाद में वह क्रमशः बढ़ती जाती है।

नारिकेल वृक्षों से आच्छादित लक्षद्वीप और मिनिकाय द्वीप-समूह का मुख्य व्यवसाय मछली पकड़ना है। कोया मछेरे अपने गीतों में मोहम्मद पैगम्बर का उल्लेख करते हैं। समुद्र से सम्बन्धित बहुत-सी स्मृतियों को भी इन्होंने गीतों में अंकित किया है।

लोकनृत्यों की दृष्टि से हमारे इन द्वीपों का वैभव अभी बहुत कुछ सामने आना शेष है। समुद्र की बातें और समुद्री दोलन की छाप इनके नृत्यों पर स्पष्ट है। □□

परिशिष्ट

लोकनृत्य क्रमिका

लोकनृत्य-क्रमिका में राज्यों के नाम कोष्ठक में दिए गए हैं। उनका संक्षिप्त रूप इस प्रकार है :

(अ)	:	असम	(बि)	:	बिहार
(आ)	:	आन्ध्र प्रदेश	(म)	:	मणिपुर
(उ)	:	उड़ीसा	(मेघा)	:	मेघालय
(उत्तर)	:	उत्तर प्रदेश	(मध्य)	:	मध्यप्रदेश
(का)	:	काश्मीर	(महा)	:	महाराष्ट्र
(के)	:	केरल	(मि)	:	मिज़ोरम
(गु)	:	गुजरात	(क)	:	कर्नाटक
(गो)	:	गोवा	(रा)	:	राजस्थान
(त)	:	तमिलनाडु	(ह)	:	हरियाणा
(न)	:	नागालैंड	(हि)	:	हिमाचल प्रदेश
(पं)	:	पंजाव	(ल)	:	लक्ष्यद्वीप
(बं)	:	पश्चिम बंगाल			

संकेत चिह्न

- ० सामाजिक एवं मनोरंजनप्रधान लोकनृत्य
- ०० ऋतु-उत्सव-सम्वन्धी लोकनृत्य
- * धार्मिक एवं आनुष्ठानिक लोकनृत्य
- ** युद्धनृत्य

लोकनृत्य क्रमिका

अंकिया (अ)*
अकहजी (न)**
अकाम (म)*
अङ्मलु (न)०
अङोकत्रु (न)०
अछरी (उत्तर)*
अंटिया (मध्य)०
अवतार (बं)००
आठियो (गु)००
इंडोणी (रा)०
उदापरत्र (उ)*
उरिडो (म)**
ओइलकुम्मी (त)*
ओइलाट्टम (त)*
ओजापाली (अ)*
ओनाके करगा (क)*

क्यांग (हि)**
कच्छी घोड़ी (रा)००
कजरी (उत्तर)००
कथोन् लिम् (म)०
क-वा-खलम् (मेघा)*
करगा (आ) (क)*
रकबड़ (महा)०
करमा (उ) (वि) (मध्य)००
करही लिम् (म)०
कलंगा (उ)*

कलियाल (त)०
कहोत् लिम (म)०
क-शद् कोन्थेई (मेघा)००
क-शद् मस्तिएइ (मेघा)००
क-शद् लिम्मोह (मेघा)०
काईकोट्टिकलि (के)*
काठी (बं) (उ)**
कारकरम् (त)*
काला (महा)००
कावड़ी (त)०
कीकली (पं)०
कीर्तन (बं)*
कीर्तनिया (वि)*
कुंजवासी (बि)*
कुडाक्कूतु (त)*
कुम्मी (आ) (त)०
केदार (उत्तर)*
केदोहोह (न)**
केला केलूनी (उ)०
कोमड़ा (महा)०
कोलकलि (के)*
कोलाट्टम (त) (आ)०
कोसाऊ-कोसाऊ (म)००

खंजरी चोलम् (म)*
खंबा-थोइबी (म)*
खाईजामा-फनाई (अ)**

खुअल् लाम् (म)*
खुबाकइसै (म)०
खुलिमा (अ)*
खेमटा (बं)०
खेल (गो)०

गाराई-दबराई नाई (अ)**
गरबा (गु)००
गरबी (गु)००
गल-अइहू (म)**
गारड़ानृत्य (गो)०
गिद्धा (पं)००
गिरदा (मध्य)००
गींदड़ (रा)०
गुंजीकूटी (उ)*
गेंडी (मध्य)००
गैर (मध्य) (रा)००
गोपरास (म)*
गोफ-गुम्फन(गु) (महा)०
गौर (मध्य)**
गौरीचा (महा)०
गौलण (महा)०

घंटा पटुआ (उ)०
घटओलानो (बं)००
घड़ियाल (उत्तर)*
घाघरा (उत्तर)०
घूमरा (रा)००
घुमाल (का)००
घूमरा (रा) (उ)००
घेर (गु)००
घोड़ा (ह)००
घोड़ायी (हि)००
घोड़ी (ह)००

चंगूनाट (उ)०
चगाई (म)००
चटकोरा (मध्य)०
चरक गम्भीरा (बं)*
चांचरी (उत्तर)०
चिंगी लिम् (म)००
चिताकजूरम (न)००
चित्र-गोपुर करगा (क)*
चीना (पं)००
चेतपरब (मध्य) (उ)००
चेमविना करगा (क)*
चेरोकान (मि)०
चैती घोड़ा (उ)००
चोंग (न)००
चोलम् (म)*
चौक (उत्तर)०
चौपाल (उत्तर)०
चौफुल्ला (उत्तर)००

छठी (ह)*
छपेली (उत्तर)०
छला (मध्य)००
छाऊ (बि) (उ)*
छोमती (उत्तर)०

ज्योति-करगा (क)*
जंगवांज्री (उत्तर)**
जंगली झूमर (पं)०
जट-जटनी (वि)००
जदहा (उत्तर)०
जदुर (वि)००
जाईफूल (उ)०
जाका लाम् (म)०
जगांर (उत्तर)*
जातरा (उत्तर)००
जाड़े करगा (क)*
जारी (वं)०
जात्रा (वि) (वं)००
जामुदाली (उ)*
जेता (उत्तर)०
जोड़ी (मध्य)०

झकोलिया (गु)०
झगोर (गो)*
झरनी (वि)*
झाङ-ता-लाम् (म)००
झांझर (हि)०
झानी जात्रा (उ)*
झामू नाट (उ)*
झिझिया (वि)०
झिम्मा (महा)०
झुलकी (उ)*
झीका (वि)००
झुमैलो (उत्तर)००
झुलकी (उ)०
झूमर (उ) (वं) (पं) (रा)००
झूरी (हि)०
झूला (उत्तर)००
झोरा (उत्तर)००

टिपणी (गु)०
टूंटियां (रा)०

डंडा (मध्य) (ह)००
डंडार (महा)०
डंडा नाच (उ)*
डंडिया (रा)०
डांगा (वि)००
डांगर्या आसन (उत्तर)०
डांगी (हि)०
डांडिया (रा) (गु) (मध्य)००
डप्पू (आ)०
डफ (ह) ०
डफ् चोलम् (म)*
डालो भागो (उ)*
डिंडिया (रा)०
डोका (गु)००
डोमकच (वि)००

ढलकायी (उ)*
ढोली (व)*

ढाली (गो)०
ढुलिया (अ)०
ढोलाचा नाच (महा)०

तापड़ी (मध्य)००
तंबोरीचा नाच (महा)०
तरपीचा नाच (महा)०
तसुङ सङ् (न)००
तियान गिद्धा (पं)००
तियाट्टु (के)*
तेराताली (रा)*
तेरुक्कूतु (त)०

थङ्या (उत्तर)००
थड़ा (उत्तर) ००
थाली (गु) (उत्तर)*
थिसाम-कुम्मेई (म)*
थेर आट्टम (के)*

दंडरासक (उत्तर)००
दक्यांग (हि)*
दकनी (गो)०
दशावतार (महा)००
दिंडी (महा)००
दुईपाली (मध्य)०
देवधानी (अ)*
दोंग (बि)००
दोधियो (गु)००

धर्मराय करगा (क)*
धमाल (ह) (बं) (रा)००
धुरिया (बि)००
धूप (बं)*

नचारी (बि)०
नतुआ (अ)००
नटुआ (बि)०
नयनी (बि)०
नागर्जा (उत्तर)*
नाट (हि)०
नाटी (हि)००
नारदी (बि)*
नित्यरास (म)*
नेजा (रा)०
नेवताली (मध्य)०
नोङक्रेम (मेघा)००

पचमुंड्या पाली (मध्य)०
पटुआ (उ)*
पटुआजात्रा (उ)*
पणिहारी (रा)०
पंवरिया (बि)०
परिचाकाली (ल)*
परेंग (म)*
पांच्यो (गु)००
पांडव नृत्य (उत्तर)००
पाखुपिला (मि)००
पान संक्रांति (उ)*

पालागान नृत्य (वं)*
पाली (मध्य)०
पाविक्कूतु (व)०
पिन्नल कोलाट्टम (त)०
पिशाच (मुखौटा) नृत्य (का)००
पिसा जोगाई (म)०
पुंगचोलम् (म)०
पुलयारकलि (के)*
पैंका (उ)**
पैंकिह्वा (बि)**
पोईइक्काल कुइराई (त)**

फराटी (हि)०
फिटलाम् (म)**
फुगड़ी (महा) (गो)०
फुरेही (हि)००
फेरा (उत्तर)०

व्यावला गिद्धा (पं)००
वऊनाच (अ)००
व्रत (वं)*
वक्यांग (हि)*
वगुरुम्वा (अ)*
बचनगमा (का)००
बतकम्मा (आ)००
बधाई (मध्य)०
वलाकाट (क)*
बलोच झूमर (पं)०
बाउल (वं)*

बाकी (उ)*
बारियो (गु)००
बिदापत (बि)*
बिमला (मध्य)००
बिहुआ (अ)०
बीहू (अ)००
बुटुखोङ ग्लान (म)०
बुरु (बि)००
बूढ़ा-बूढ़ी (वं)*
बोयांग्चू (हि)०

भंवरिया (अ)**
भगत (बि)*
भगोरिया (मध्य) (रा) (गु)००
भद्रकलि (के)*
भवानी (अ)*
भांगड़ा (पं)००
भांड पाथेर (का)०
भाओना (अ)*
भगवत मेला (त)*
भाजो (वं)००
भूतकोला (क)*

मंडा (बि)*
मंडो (गो)००
मखोम् (म)०
मथुरी (आ)००
मटकी (मध्य)००
मरसिया (वं)*

मरिवौक जोगोई (म)०
महारास (म)*
मांदरी (मध्य)०
मादल पूजा (बं)*
माई-गाई-नाई (अ)००
माथर (वि)००
मायल जाड़ा (उ)*
मेघा (उ)*
मोयायरि (न)**
मोंवली (मध्य)०

यचुमि (न)*
यक्षगान (क)*
येत्सिमि केधिले (न)*

रखतला (मि)*
रणसो (उत्तर)**
रस केरल (उ)००
राई (मध्य)००
रायबेश (बं)**
रास (गु) (मध्य) (म) (ह)००
रासक (गु) (उत्तर)००
रीना (मध्य)००
रुङखाम् लाम् (म)०
रुङ-खाम् (म)**
रुफ (का)००

लगने (बि)*
लाइहारोबा (म)*
लाहो (मेघा)०
लुइरू फनित (म)००
लुड्डी (पं)०
लुपेअ (म)**
लेई-तेई (म)*
लोकेने (म)*
लोनेते (म)*
लेंहगी (मध्य)०
लेजिम (महा)**
लोटा (मध्य)०
लोम जुनेक (म)००

वसन्तरास (म)*
वयिंदा नई (त)०
वांगला (मेघा)००
वाइकोङ नृत्य (म)*
वालर (रा)**
विदेसिया (बि)०
विल्लूपाटु (त)०
वेलकलि (के)*
वैद्य (क)*

शामा-चकेवा (बि)*
शंकरिया (रा)०
शिमशाक कुम्मेई (म)००

संकीर्तन (म)*
सकराउ-ली (अ)**
सतारो (बि)०

सांग (ह)०
सांगला (हि)*
सा-अई (म)००
सात्यो (गु)००
सान गालावी वनाई (अ)००
सिद्दी (आ)*
सिपरी (महा)*
सिवेमि (न)**
सी-लप् (म)००
सूआ (मध्य)००
सयनलाड़ी (उ)**
सनजोईवा (म)०
सैंला (मध्य)००

हमची (गु)००
हराङ लाम् (म)**
हली (गु)०
हार (हिं)०
हिकात (का)०
होंच (गु)००
हुकारी (अ)००
हुलकी (मध्य)०
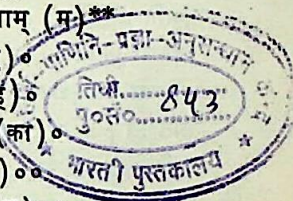
पारिभाषिक शब्द-सूची

अतिथि guest
अन्धविश्वास superstition
अनुपयोगी useless
अनुशासन discipline
अनुष्ठान ritual, ceremony
अनुसूचित जाति scheduled caste
अभाव scarcity
अर्द्धवृत्त semi-circle
अस्तित्व existence
आक्रामक aggressive
आदिवासी aboriginal
आधुनिक modern
आंदोलन movement
इकाई unit
इन्द्रधनुष rainbow
उपजाति sub-caste
ऐतिहासिक historical
औपचारिक formal, ceremonial
कल्याण welfare
कृषि agriculture
क्षमता capacity
गतिविधि activity
गुप्तचर spy
जनपदीय regional
तुलना comparison
दशक decade
द्वीपसमूह islands
धार्मिक religious

परम्परागत traditional
पिछड़े backward
पीढ़ी generation
पृष्ठभूमि background
प्रकृति nature
प्रतिभा genius
प्रतिष्ठा prestige, dignity
प्रतिशत percent
प्रतीक symbol
प्रदर्शन demonstration, display, performance
प्राकृतिक natural
प्रोत्साहन encouragement
भौगोलिक geographical
मध्यकालीन medieval
मनोरंजन entertainment
मर्यादा dignity
माध्यम medium
मानचित्र map
मुखौटा mask
मुद्रा pose, posture
मूलभूत fundamental
मूल्य value
यायावर nomad
रहस्यमयी mysterious
लोक कला folk art
लोक गीत folk song
लोक जीवन folk life
लोक धुन folk tune
लोक नृत्य folk dance
लोकप्रिय popular
लौकिक worldly
वर्तुलाकार circular
वातावरण atmosphere
विकसित developed
विविधता veriety
विश्लेषण analysis
विशेषता speciality, characteristics
शताब्दी century
शास्त्रीय classical
शैली style
स्थानीय local
स्वांग mimicry
संदर्भ reference
संपर्क contact
संवाद dialogue
सभ्यता civilization
समकोण right angle
समर्पित dedicated
साधन means
सामरिक strategic
सामाजिक social
सीमांत frontier
श्रेय credit

हरिकृष्ण प्रिंटिंग सर्विस, शाहदरा दिल्ली-32

भारत के लोकनृत्य

डॉ० श्याम परमार

डॉ० श्याम परमार की नई पुस्तक 'भारत के लोकनृत्य' में भारत के सभी प्रान्तों तथा द्वीप-समूह के लोकनृत्यों का विवरण प्रस्तुत है। विविधताओं के देश भारत में लोकनृत्यों के कितने प्रकार हैं, यह जानना भी अपने-आपमें सुखद आश्चर्य है। यहां इन नृत्यों की परम्पराएं, नर्तकों की वेशभूषा, साजबाज, इनके अवसर और स्थान तथा इनके नाचने के रंग-ढंग—सब कुछ स्पष्टता से बताया गया है।

आज के नये युग के परिप्रेक्ष्य में इन लोकनृत्यों का लेखा-जोखा बहुत ही महत्त्वपूर्ण और रोचक है। इस देश के विभिन्न संस्कृतियों वाले समाज में प्रचलित लोकनृत्यों के अध्ययन पर यह पुस्तक भारत को समग्ररूप से जानने में एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है।